आचार्य श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी प्रणीत

श्री कल्प सूत्र

व्याख्याकार

श्रो जैनदिवाकर, प्रसिद्धवक्ता गुरुदेव श्री चौथमल जी महाराज के सुशिष्य
उपाध्याय पं० मुनि श्री प्यारचद जी महाराज

प्रकाशक

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

द्वितीय सस्करण
अक्षय तृतीया २०२६

मूल्य
पाच रुपये मात्र

आदि वचन

जैन परम्परा मे 'कल्पसूत्र' का एक विशिष्ट स्थान है। पर्वाधिराज पर्युषण के दिनो मे श्वेताम्बर समाज मे इसका अधिकाधिक वाचन एव पठन किया जाता है। स्थानकवासी क्षेत्रो मे भी इसके वाचन के प्रति आकर्षण वढता जा रहा है। प्रात अतगड सूत्र एव मध्यान्ह मे कल्पसूत्र का वाचन वहुत से क्षेत्रो मे किया जाता है।

कल्पसूत्र के अनेक सस्करण समाज के सामने आये है, वे सुन्दर भी है, शोधपूर्ण भी है। किंतु इतना सरल, जनोपयोगी और व्याख्यानोपयोगी सुन्दर सस्करण सभवत यही है। इसका सर्व जनोपयोगी रूप मे प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय स्व० उपाध्याय श्री प्यारचद जी महाराज को ही मिलता है। इसका सस्करण पत्राकार एव वडे टाइप मे होने के कारण व्याख्यानदाताओ के लिए यह अधिक सुविधा पूर्ण है।

स्वाध्याय प्रेमी इसमे अधिकाधिक लाभ उठाये—इसी प्रमोद भावना के साथ

—अशोकमुनि

नववर्ष
वि० स० २०२६
वेंगलूर सिटी

मुद्रक—श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निर्देशन मे श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा मे मुद्रित

❋ कल्पसूत्र ❋

दशकल्प

(१) आचेलक्य (२) औद्देशिक (३) शय्यातर (४) राजपिण्ड (५) कृतिकर्म (६) व्रतकल्प (७) ज्येष्ठकल्प (८) प्रतिक्रमण (९) मासकल्प (१०) पर्युषण ।

आचेलक्य –आचेलक्य शब्द वस्त्रो के अभाव और अल्प वस्त्र का द्योतक है। जब साधु जिनकल्प अवस्था मे रहते है, उन्हे वस्त्र रखने का कोई अधिकार नही होता। और जो मुनिराज स्थविर-कल्प अवस्था मे होते है वे मर्यादित वस्त्र रखते है। अर्थात् वे अधिक से अधिक तीन चादर रख सकते है। यह अल्पवस्त्र ही है। इससे भी कम यदि कोई मुनि दो या एक चादर रक्खे तो ये सब अल्पवस्त्र धारण करनेवाले ही कहलावेगे।

श्री ऋषभदेव भगवान के शासन-काल मे मुनियो को केवल प्रमाणोपेत श्वेत वस्त्र ही धारण करने का अधिकार था। इसीप्रकार, भगवान् महावीर के शासन-काल के मुनि-मण्डल को भी श्वेत-वस्त्र धारण करने की आज्ञा है। शेष बीच के बाईस तीर्थंकरो के शासन के साधु, साध्वियो को रग-बिरगे व बहुमूल्य वस्त्र भी रख सकने की आज्ञा थी।

औद्देशिक –गृहस्थ, साधु का नामोद्देश करके, जो आहार आदि निर्माण करे, उसे औद्देशिक कहते है। ऐसा आहार आदि पहले और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन के साधु नही ले सकते। और बीच के बाईस तीर्थङ्करो के शासन के साधु के लिए नामोद्देश करके बनाया हुआ आहार आदि, वे मुनि जिनका नामोद्देश किया गया है, नही ले सकते। परन्तु अन्य साधुओ के लिए इसकी मनाई नही है।

शय्यातर :–शय्यातर अर्थात् जिस मकान मालिक की आज्ञा लेकर रहे, उसके यहाँ से आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, सूई आदि किसी भी तीर्थङ्कर के शासन के मुनि नही ले सकते। परतु तृण, भस्म (राख), शिला, पाट आदि शय्यातर के यहाँ से ले सकते है।

राजपिण्ड –राज्याभिषेक के समय मे निर्मित भोजन साधु को लाना अकल्पनीय है। क्योकि, उस समय वहाँ साधु के जाने से कोई अज्ञानी अपशकुन समझकर, साधु का निरादर करदे, तो उसमे जैनशासन की लघुता दीख पडती है। इसके अतिरिक्त, जिस समय राजा भोजन करने को बैठता है, उस समय शाकाहारी

एव मासाहारी, दोनो चोकों से भोजन लाकर राजा की थाली मे परोसा गया हो, तो उस थाल म स आहार लेना, साधु के लिए वर्जित है।

कृतिकर्म –जिसने बाद मे दोक्षा ली है, वह मुनि प्रथम के दोक्षित मुनि को वन्दन, अभ्युत्थान आदि से सम्मानित करेगा। चाहे, आयु मे वह फिर बड़ा ही क्यों न हो। परन्तु साध्वी चाहे वह पचास वर्ष से भी दीक्षित क्यो न हो, नवदीक्षित मुनि को वन्दनादि करेगा।

व्रतकल्प –प्राणातिपात से निवृत्ति, मृषावाद से निवृत्ति, अदत्तादान से निवृत्ति और परिग्रह से निवृत्ति, इन चार महाव्रतो मे मैथुन से निवृत्ति का महाव्रतो का उच्चारण ही पर्याप्त था। परन्तु प्रथम एवं अन्तिम तीर्थङ्करो के शासनकाल मे जड़ और वक्र साधुओं के कारण चार की जगह पाच महाव्रतों का विधान हुआ।

ज्येष्ठकल्प –प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो को छोड़कर बाईस तीर्थङ्करों के शासन-काल में, साधु सामायिक चारित्र एक साथ ग्रहण करते समय, पिता को ज्येष्ठ पद और पुत्र को लघुपद दिया जाता है। तब, प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन काल मे पिता, पुत्र, राजा, मत्री, सेठ, मुनीम आदि एक ही साथ दीक्षा ले तो इनमे ज्येष्ठ कौन होता है? यह प्रश्न सहज ही में उठ खड़ा होता है!

इसका समाधान यह है कि पिता, पुत्र साथ में दीक्षा ले, और साथ ही में सदोष स्थापना चारित्र मे प्रवेश होते हो, तो पहले पिता को सदोष स्थापना चारित्र में प्रवेश कर फिर पुत्र को प्रविष्ठ करे। इससे

॥ ३ ॥

पिता ज्येष्ठ पद पर रहेगा। यदि बुद्धि-मान्द्य के कारण सदोष स्थापना चारित्र मे प्रवेश पाने मे पिता को विलम्ब हो, तो पुत्र के लिए भी आचार्य महाराज सदोप स्थापना चारित्र मे प्रवेश करने मे देरी करें। अर्थात् वडी दीक्षा देरी से दे। इस कारण, साथ दीक्षा देने पर भी पिता, राजा, सेठ, पुत्र, मत्रो आदि से ज्येष्ठ पद पर रहने का कल्प है।

प्रतिक्रमण —अतिचार लगे या न लगे, तथापि प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधु प्रतिक्रमण करते ही है। शेप बाईस तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओं के लिए अतिचार लगने पर ही प्रतिक्रमण करने का विधान है। यदि अतिचार न लगे, तो उनके लिए प्रतिक्रमण करना आवश्यक नही।

मासकल्प .—प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधु रोगादि के कारण बिना, एक गाँव मे एक मास से अधिक नही ठहर सकते। एक मास रह लेने के पश्चात्, यदि फिर उसी गाँव मे रहना आवश्यक प्रतीत हो, तो दो मास के बाद आकर उस गाव मे फिर एक मास तक रह सकते है। परन्तु शेष बाईस तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओ के लिए इस मास-कल्प विहार का बन्धन नही है।

पर्युषण —धर्म—आराधना के लिए एक स्थान पर रहने को 'पर्युपण' कहते है। आषाढी पौर्णिमा से उनपचास-पचासवे दिन, भाद्र-पद शुक्ल पचमी के दिन, सवत्सरी पर्व की आराधना करना, 'पर्युपण-कल्प' है।

तव, "प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओ और शेप वाईस तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओ से विधान के लिए अन्तर क्यो वतलाया गया ?"

हाँ, आपका प्रश्न उचित है। इसका समाधान यह है, कि प्रथम तीर्थङ्कर के शासन काल के साधु, सरल और जड होते थे, एवं महावीर स्वामी के शासन के साधु वक्र और जड है। इसलिए उन्हे धर्म पालने मे कठिनाई जान पड़ती है। और बाईस तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओ का सरल और प्राज्ञ होने के कारण, उनके द्वारा सुलभता से धर्म का पालन हो सकता है। यही कारण है, कि इनके विधानो मे भी अन्तर है।

प्रथम तीर्थङ्कर के शासन-काल के साधु सरल और जड किस प्रकार होते थे, इसे यहा एक दृष्टात द्वारा समझाया जाता है।

एक समय, एक शिष्य भिक्षा लेने को गया। किसी गृहस्थ के घर से उसे बत्तीस बडे (भुजिआ) प्राप्त हुए। शिष्य ने विचार किया कि, जब मै पौपधशाला मे जाऊगा, वहा गुरुजी सोलह बड़े मुझे अवश्य देगे। क्योंकि, साधुओ के लिए भोजन के विभाग का नियम है। तब, मै अपने विभाग के वडे ठडे क्यो करू ? गरमागरम ही क्यो न खालू ? यह विचार कर वह मुनि सोलह वडे खा गया। सोलह बडे खाने के बाद, उसने विचार किया, कि जब गुरुजी के पास जाऊगा, तब, मुझे आठ वडे अवश्य मिलेगे यूं अपनी पाती के वे

॥ ५ ॥

बडे भी मै ठण्डे क्यो करू ? यह सोच कर शेष मे से आठ उसने और खा लिए। इसी प्रकार चार, दो, और एक बडा क्रमश वह खा गया। केवल एक बडा बचाकर वह गुरुजी के पास पहुँचा। भिक्षा की सामग्री देख कर गुरुदेव शिष्य से बोले—

"भद्र ? एक बडा किस दातार ने दिया ?"

"नही गुरुदेव !" शिष्य ने कहा—पूरे बत्तीस बड़े प्राप्त हुए थे। परन्तु विभाग का विचार करता गया और इकतीस बडे क्रमशः गरमागरम मै स्वय खा गया।

इस पर गुरुदेव ने कहा—अरे शिष्य! गुरु को खिलाये बिना ही वे बड़े तेरे गले मे उतर कैसे गए ?

बचा हुआ बडा मुँह मे डालते हुए शिष्य ने कहा—"गुरुजी, इस प्रकार वे बड़े गले में उतर गये।"

गुरुजी हस पडे। यह है सरलता का उदाहरण।

अव जडता का उदाहरण भी देखिये। एक शिष्य भिक्षा लेने को गया। मार्ग मे, कही, नट का खेल हो रहा था। वह भिक्षु भी खेल देखने मे रह गया। खेल समाप्त होने के पश्चात् वह भिक्षा लेकर आया। यूं, उसे कुछ देर हो गई। गुरु ने कहा, "आज तुम्हे भोजन लाने मे देर कैसे हो गई।"

शिष्य ने कहा—'नट का खेल देखने मे रह गया था।"

तब गुरु ने कहा—"अपने को नट का खेल नही देखना चाहिए।"

"आपने मुझे पहले कब मना किया था ।" "खैर, अब नट का खेल मत देखना ।" "बहुत अच्छा गुरुदेव ! नही देखूँगा ।"

दूसरे दिन, वही शिष्य भिक्षा लेने को गया । मार्ग मे, नटी का खेल हो रहा था । वह, खेल देखने को रह गया । खेल समाप्त होने पर वह भिक्षा लेकर आया । गुरु ने पूछा "आज भी इतनी देर फिर क्यो हो गई ? शिष्य ने कहा—महाराज ! आज नटी का खेल देख रहा था । अरे, तुझे कल मना किया था न कि खेल मत देखना ? महाराज ! आपने तो नट का खेल देखने का निषेध किया था, न कि नटी का !

नट के खेल के साथ सब खेल देखने का निषेध हो चुका था । परन्तु जडता के कारण, शिष्य नट के खेल का निषेध करने पर केवल नट ही का खेल नही देखने की बात को समझा । यह है, सरलता के साथ जड़ता का उदाहरण । भगवान् महावीर के शासन-काल के साधु जड और वक्र होते है । शिष्य के नट का खेल देखने पर गुरु ने उसे समझा दिया था कि हमे खेल नही देखना चाहिए । फिर भी दूसरे दिन, उसने नटी का खेल देखा । तब गुरु ने कहा, नटी का खेल क्यो देखा ? तुम्हे यह खेल नही देखना था । शिष्य ने कहा, कल आपने नट का खेल देखने का निपेध किया था किन्तु नटी का खेल देखना आपने निषेध नही बतलाया था । यह दोष आपका है, मेरा नही । यह है सरलताहीन जडता का उदाहरण ।

अब वक्रता का उदाहरण भी देखिए । एक व्यापारी अपने पुत्र को यह शिक्षा देता है, कि पुत्र ! अपने

बडे-बूढो के सामने नही बोलना चाहिए। बहुत अच्छा, कह कर, वह पुत्र घर के सब किवाड व खिडकिया बन्द करके अन्दर बैठ गया। पिता बाहर गया हुआ था। वह घर आया और किवाड खोलने के लिए लडके को उसने पुकारा किन्तु लडका टस से मस भी न हुआ। पिता प्रयत्न करके हार गया। तब दीवाल आदि को लाघकर व किवाड आदि तोडकर वह मकान के भीतर गया और पुत्र से बोला क्यो रे, किवाड क्यो न खोले ! इस पर पुत्र बोला—आप ही ने तो मुझे सिखाया, कि बडे-बूढो के सामने नही बोलना। यह है वक्रता का उदाहरण।

बाईस तीर्थङ्करो के काल के साधु सरल और प्राज्ञ थे। जैसे, इनके शासन-काल के साधु ने नट का खेल देखा। गुरु ने देरी से पहुँचने का कारण पूछा। शिष्य ने सरलता के कारण कह दिया, कि विलम्ब का कारण नट का खेल देखना था। तब गुरु ने आदेश दिया कि नट का खेल नही देखना चाहिए। शिष्य ने स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन, नटी का खेल हो रहा था। शिष्य ने प्राज्ञता के कारण, विचार किया कि नट का खेल देखना क्यो निषिद्ध है। सोचने पर मालूम हुआ, कि खेल देखने से राग पैदा होता है। जब नट तक के खेल मे राग पैदा होता है, तब नटी के खेल मे तो, विशेष राग पैदा होने की संभावना है। इसलिए नटो का ही क्या, कोई भी खेल कभी नही देखना। यही साधु का कल्प है।

पर्युषण-पर्व चातुर्मास मे मनाया जाता है। आषाढी पौर्णिमा से चातुर्मास प्रारभ होता है। पर्युषण के उन्हत्तर-सत्तर दिनो के पश्चात् चातुर्मास पूर्ण हो जाता है। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के अतिरिक्त वाईस तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधुओ के लिए चातुर्मास के काल का बन्धन नही था। यदि विहार करने मे दोप हो, तो विहार न करे। और विहार करने मे दोष न हो, तो विहार करे। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करो के शासन-काल के साधु, बिना किसी कारण के चातुर्मास मे विहार नही कर सकते। यदि कोई आवश्यक कारण हो, वैसा कर सकते है। उदाहरणार्थ जहां उपद्रव होता हो, शुद्ध आहार न मिलता हो, राज्य-भय, या राग का प्रादुर्भाव हो गया हो, तो वहा से चातुर्मास मे भी विहार कर सकते है। इसी प्रकार, स्थडिल (शोच) की भूमि ठीक न हो, ठहरने के स्थान मे जीवो की उत्पत्ति विशेष रूप से हो गई हो तो इन कारणो से विहार कर सकते है।

साधु वही चातुर्मास करते है जहाँ निम्नलिखित तेरह बाते या इनमे से कुछ मिलती हों। जैसे —(१) जहा, अधिक कीचड (कादो) न हो। (२) सम्मूर्छिम जीवो की उत्पत्ति विशेष न हो। (३) स्थंडिल (शौच) की जगह ठीक हो। (४) पौषध-शाला में स्त्री, पशु, पडग का निवास-स्थान न हो (५) गोरस बहुत हो! (६) लोक भद्रिक हो। (७) वैद्य भद्रिक हो। (८) औपधि मिलती हो। (६) गृहस्थो के घर धन-धान्यादिको से भरपूर हों। (१०) राजा न्यायी हो। (२१) मिथ्यात्वी का अधिक जोर न हो। (१२) आहार पानी

सुगमता से मिल सकता हो। (१३) ज्ञान ध्यान सुलभता से हो सकता हो।

होली, दशहरा आदि त्योहारो पर लोग अधिक पाप करके प्रसन्न होते है। यह गाढ कर्मो के उपार्जन का कारण है। दयामय उत्तम त्यौहार, पर्यु षण-पर्व का है। इसमे श्रावक-श्राविका दया, पौषध, सामायिक, ब्रह्मचर्य आदि धारण करते है। अतएव यह धर्म की महान् उत्पत्ति है।

जैसे मत्रो मे पंचपरमेष्ठी मत्र, दानो मे अभय-दान, गुणो मे विनय, व्रतो मे ब्रह्मचर्य, दर्शनो मे जैन-दर्शन, दुग्ध मे गाय का दूध, जलो मे गंगाजल, हाथियो मे ऐरावत, वनो मे चन्दन-वन, काष्ठ मे चन्दन, प्रकाश मे सूर्य-प्रकाश, और पर्वतो मे मेरु-पर्वत सर्व श्रेष्ठ है, उसी प्रकार, सब उत्सवो और त्यौहारो मे पर्यु षण-पर्व श्रेष्ठ उत्सव और त्यौहार है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावपणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।

वीतराग भगवान् ने स्वय, अनादि सिद्ध नवकार-मत्र की महिमा, भव्य जीवो को, इस प्रकार प्रदर्शित

॥ १० ॥

की है—यह नवकार मत्र, सब मङ्गलो का सार-भूत, जिन-शासन का तात्विक पदार्थ और चौदह पूर्वो का निचोड है। सभी गणधरो ने इस बात का एक स्वर से समर्थन किया है। यही कारण है कि कल्पसूत्र के प्रारम्भ मे इसे प्रथम मगल की जगह स्थान दिया गया है। इस नवकार-मत्र का अर्थ इस प्रकार है —

णमो अरिहंताणं–अर्थात् घन-घाती कर्मो का नाश करके, जिन्होने सर्वोपरि ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो पूजनीय पद से सुशोभित है, उन देवाधिदेव जिनेश्वर भगवान् को हमारा नमस्कार है।

बारह गुणो से युक्त, ऐसे अरिहत भगवान् महाविदेह क्षेत्र मे विराज कर, भव्य जीवो को प्रतिबोध दे रहे है। ये विहरमान (विद्यमान) तीर्थङ्कर जबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे चार, धात्रीखण्डों के महाविदेहो मे आठ और अर्द्ध पुष्कर द्वीप मे आठ इस प्रकार, कम-से-कम बीस तीर्थङ्कर देव विराजते रहते है।

णमो सिद्धाणं–अर्थात् जिन्होने अष्ट कर्मो का नाश करके परमानद प्राप्त कर लिया है, उन सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो। सिद्ध भगवान् अनतज्ञान, अनंतदर्शन, आदि गुणो से युक्त है।

णमो आयरियाणं–अर्थात् आचार्य महाराज को नमस्कार हो। आचार्य महाराज ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार और वीर्याचार का स्वयं पालन करते है। और वे उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो के आचार पर पूरा-पूरा ध्यान रखते है। यही नही, वे मुनि-मण्डल का नेतृत्व भी करते है। ऐसे आचार्य महाराज मे छत्तीस गुण होते है।

णमो उवज्झायाणं—अर्थात् उपाध्याय जी महाराज को नमस्कार हो। उपाध्याय जी महाराज अंगोपांग सूत्रों को स्वय पढते है, औरों को ज्ञान-दान देते है। स्याद्वाद सिद्धान्त का खूब प्रचार करके जिनशासन को दिपाते है। ऐसे उपाध्यायजी महाराज पच्चीस गुणों से युक्त होते है।

णमो लोए सव्वसाहूणं—लोक मे सर्व साधुओ को नमस्कार हो। साधुजी महाराज सत्ताईस गुणो से युक्त होते है। बयालीस दोषो को टाल कर अन्न-जल लेते है। नवकल्पी विहार करने वाले, क्षमाशील, दयावन्त, आप स्वय तिरे, व दूसरो को तारने वाले होते है, मर्यादित वस्त्र रखते है। वायु-काय के जीवो की रक्षा के लिए मुंह पर मुहपत्ति बाधते है। और जोवो की रक्षा के लिए रजोहरण रखने वाले होते है।

एसो पंच णमोक्कारो—अर्थात्—यह पाच प्रकार का नमस्कार पद, **सव्वपाव पाणसणो**—अर्थात् सब पापो का नाश करने वाला है। **मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलं**—अर्थात् यह सब मगलो मे प्रथम मंगल है और मंगल करनेवाला है! जो व्यक्ति इसका जप करता है, उसके आधि, व्याधि, दुख, दारिद्र आदि सम्पूर्ण दोष समूल नष्ट हो जाते है।

जिसके एक ही इष्ट होता है, वह भी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त कर सकता है। फिर जिसके पाच इष्ट पंच परमेष्ठी के है, और जो इसका जप करने वाला है, वह यदि ऋद्धि-सिद्धि पा जाय, तो इसमे अचरज हो कौनसा है। नवकार-मत्र के जप से, तो मोक्ष रूपी सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी तक प्राप्त हो सकती है।

जो व्यक्ति परमेष्ठी-पद का एक अक्षर तक भाव सहित बोल लेता है, उसके सात सागरोपम के कष्ट दूर हो जाते है। फिर जो एक पद का भाव सहित उच्चारण करता है, उसके पचास सागरोपम के कष्ट दूर हो जाते है। और पूरे पंच परमेष्ठी को भाव सहित जपने से पांच सौ सागरोपम के कष्ट दूर हो जाते है। जो इस नवकार मत्र को एक लाख बार भाव सहित जप लेता है, उसे तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति हो जाती है। इसके जपने से महान् लाभ की प्राप्ति होती है।

कथा—पोतनपुर नगर मे, सुगुप्त नाम का व्यापारी रहता था। वह बड़ा श्रद्धालु श्रावक था। सुगुप्त को एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम श्रीमती रक्खा गया। श्रीमती रूप लावण्य की प्रतिमा थी। उसमे रूप के साथ ही साथ सदाचार और शिक्षा का सयोग, सोने मे सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ करता था।

इस असार समार मे गुण के पुजारी बहुत ही थोड़े—देखे सुने जाते है। इसके विपरीत रूप ज्वाला मे जलनेवालो की यहा कोई कमी कभी नही होती। एक मिथ्यात्वी श्रीमती को देखकर पागल हो गया। उसे प्राप्त करने के लिए उसने अनेक प्रयत्न किये। परन्तु सुगुप्त, श्रीमती का विवाह किसी जैन कुमार ही से करना चाहता था। अत मे उस मिथ्यात्वी कुमार ने श्रीमती को प्राप्त करने के लिए रगेसियार की भाति छद्म वेश धारण करना स्वीकार किया। कपट-पूर्वक नकली श्रावक बनकर वह धर्माराधन करने लगा।

श्रद्धालु श्रावक सुगुप्त ने उस लडके का यह व्यवहार देखकर बिना किसी विशेष प्रकार की छानबीन किये उसके साथ अपनी कन्या का लग्न कर दिया। विवाह के पश्चात् वह कुमार अपने मिथ्यात्व के रग मे फिर रग गया।

श्रीमती की सासू, श्वसुर, देवर, जेठ, देवरानी, जेठानी, ननदे व पतिदेव उसके नवकारमत्र की हंसो किया करते थे। जब वह मुँह पर मुँहपत्ति बाँधकर सामायिक, प्रतिक्रमण, या पौषधव्रत अगीकार करती, तो वे लोग उससे चिढकर उसे नाना प्रकार के कष्ट देने को तत्पर रहते थे। परन्तु धन्य श्रीमती !! तुमने नवकार–मंत्र से कभी भी श्रद्धा नही हटाई। हिमालय की तरह तुम अपने पथ पर सदा अचल व अडिग बनकर रहो। वह सदा विचार करती रहती और मन-ही-मन कहती रहती कि धर्म की परीक्षा सकट के समय ही मे हुआ करती है।

श्रीमती के कष्टो का तनिक भी ओर-छोर न था। ललनाएँ जो भी अबलाएँ होती है, फिर भी सासारिक अन्य कष्टो को वे एक बार हँसते-हँसते सह भी लेती है। परन्तु सौत का क्षण भर का कष्ट तक सहना उन्हे असह्य हो जाता है। यह विचार कर उन सभी मिथ्यात्वियो ने उस लडके का एक और विवाह कर दिया। श्रीमती ने सोचा कि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का अचानक ही एक अच्छा अवसर मिल गया। वह अपने धर्म, व नियम मे और भी ज्यादा दृढ हो गई। यही नही, उसने आगन्तुक नववधू का अपनी छोटी

॥ १४ ॥

बहन की तरह स्वागत भी किया ।

श्रीमती को अपने धर्म पर आरूढ देख, सब प्रकार से निराश होकर उसके पति ने एक दिन उसका अंतिम अकाण्ड काण्ड करने का निश्चय किया । एक विषधर भुजग को एक घड़े मे बन्द करके श्रीमती के पास इस सन्देश के साथ भेजा, कि इस घड़े मे तुम्हारे लिए बहूमूल्य हार है । उसे इसमे से निकाल कर तुम उसे अपना कण्ठाभरण बनालो ।

सासारिक कष्टो का सामना करते-करते,–सुने री ! **मैने निर्बल के बल राम,** के नाते सती ने एक नियम हो बना लिया था कि नवकार-मत्र का श्रद्धापूर्वक जप किये बिना किसी भी सांसारिक कार्य का प्रारंभ ही नही करती थी । इस समय भी उसने वैसा ही किया । तत्पश्चात् उसने घड़े मे हाथ डालकर हार निकाला, और पतिदेव की आज्ञानुसार उसे गले मे डाल लिया ।

नवकार मत्र का प्रभाव ही ऐसा होता है कि जिससे अब तक साधक की साधना और श्रद्धा के अनुसार उससे अनेको अनहोनी घटनाएँ घट जाती है । आज भी वही हुआ, घड़े मे का भुजग सचमुच मे हीरे का हार बन गया । इस चमत्कार को अपनी आखों से देख उसके पति को भी नवकार मत्र पर सच्ची और सुदृढ श्रद्धा हो गई । तब तो, घर-भर के लोगो में श्रीमती का सम्मान हो गया । नवकार-मत्र के निरन्तर जप से, श्रीमती के दिन पलट गये । अब तो वह और भी स्नेह-भाजन बन गई । इसी के साथ एक घटना और भी

घटी । घर के सब लोगो ने मिथ्यात्व से नित्य का नेह-नाता तोड दिया और जैनधर्म से नाता जोड लिया। यह है नवकार-मंत्र की महिमा । यह तो हुई भूतकाल की एक बात । वर्तमान मे भी, बीसियो उदाहरण, इसकी महिमा के पाये जाते है । श्रोता वर्ग स्वयं इस मन्त्र महामणि को अपने गले का हार, एक बार बनावे और तब इसके अचूक व अभूतपूर्व लाभों का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकेंगे !

इस कल्पसूत्र मे, प्रथम अत्यन्त समीप के उपकारी भगवान् महावीर स्वामी का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ और फिर इसी क्रम से, भगवान् आदिनाथ तक का जीवन वृत्त लिखा गया है ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे हुत्था । तं जहा हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे ५, साइणा परिनिव्वुए भयवं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इसी अवसर्पिणी काल के चौथे आरे मे माहणकुण्ड ग्राम मे, देवानन्दा नाम की एक ब्राह्मणी

रहती थी। भगवान् महावीर स्वर्ग से च्यव कर इसी ब्राह्मणी के गर्भ मे पधारे, उस समय, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र था। जब देवानन्दा की कुक्षि मे वीर भगवान् का अपहरण हुआ, और वे जब महारानी त्रिशला देवी के गर्भ मे पधारे, उस समय भी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र ही था। वीर प्रभु का जन्म भी इसी नक्षत्र मे हुआ। भगवान् महावीर मुण्डित होकर जब मुनि बने, व जब उनने ससार से नेह-नाता तोडा, उस समय भी उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र था। ओर, इसी उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे ही महावीर स्वामी को व्याघात और आवरण रहित, अखण्ड, प्रतिपूर्ण, अनन्त केवल-ज्ञान ओर केवल दर्शन भी उत्पन्न हुआ। अवशेष कर्मो के नाश होने पर, स्वाति नक्षत्र मे भगवान् मोक्ष मे पधारे।

पहले नयसार के भव मे, महावीर ने तीर्थङ्कर बनने के लिए सम्यक्त्व का स्पर्श किया था जिसका विवरण इस प्रकार है।

पश्चिम महाविदेह क्षेत्र मे, पृथ्वीप्रतिष्ठ नामक एक नगर था। वहा का राजा शत्रुमर्दन था। उस नगर का वनाधिनायक (फारेस्टर) नयसार था। शत्रुमर्दन ने नयसार को जंगल से काष्ट लाने की आज्ञा दी। आदेश पाकर, नयसार अपने दल-बल-सहित, काष्ट लाने को वन की ओर चला।

नयसार की आज्ञानुसार, कुछ लोग काष्ट के काटने आदि के काम मे लग गये। और कुछ व्यक्ति भोजन निर्माण के काम मे जुट गये। जब भोजन तैयार हो गया, नयसार भोजन करने को बैठा। उसी समय

किसी अतिथि के आगमन की विशुद्ध भावना उसके मन मे जाग पडी। "याद्दशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति ताद्दशी" के अनुसार एक मुनि रास्ता भूल जाने से, उस अटवी मे निकल आये। नयसार ने अत्यन्त भक्ति-पूर्वक उन्हे आहार बहराया। बस, यही नयसार के महावीर बनने की नीव थी। नयसार आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देव लोक मे एक पल्योपम को स्थिति वाला देव हुआ। वहाँ से च्यवकर भरत चक्रवर्ती के पुत्र मरीचि के रूप मे वह प्रकट हुआ। एक बार अपने पुत्र मरीचि को लेकर महाराज भरत भगवान आदिनाथ का उपदेश सुनने को गये।

चक्रवर्ती भरतजी ने भगवान् आदिनाथ से प्रश्न किया, कि हे भगवन्! यहाँ कोई ऐसा प्राणी भी है जो इसी चौबीसी मे तीर्थङ्कर पदवी को प्राप्त करेगा? उत्तर मे भगवान् आदिनाथ ने फरमाया, हे भरत! तुम्हारा यह पुत्र मरीचि स्वयं वासुदेव और चक्रवर्ती के भवो का अनुभव करने के पश्चात् चौबीसवे तीर्थङ्कर, भगवान् महावीर के रूप मे प्रकट होगा। यह बात सुन कर, मरीचि को वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह मुनि बन गया।

परिषह सहन करना मामूली काम नही है। मरीचि मुनि, उष्ण ऋतु के परिषह को नही सहन कर सके, और प्यास के कारण, महान दुखी हो गये। अन्त मे, वे त्रिदण्डी बनने के लिये विवश हो गये। परन्तु जो भी कोई दीक्षित होना चाहता उसे वे भगवान् ऋषभदेव के साधुओ के पास भेजने लगे। त्रिदण्डी ने कपिल को

अपना शिष्य बनाया। कुछ समय के बाद त्रिदण्डी, आयुष्य पूरा करके ब्रह्मदेवलोक में गया। यह भगवान् महावीर का चौथा भव है।

ब्रह्मदेव लोक की आयु पूर्ण करके कोल्लाक नामक ग्राम मे भगवान् ने एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया। वहाँ इनका नाम कौशिक रक्खा गया, कौशिक ने अन्तिम अवस्था मे त्रिदण्डी को वृत्ति धारण की थी। यह भगवान का पाँचवाँ भव है।

छठे भव मे, भगवान—त्रिदण्डी की आयु पूर्ण करके, ईशान नामक स्वर्ग मे गये। वहाँ की आयु पूर्ण करके सातवे भव मे हस्तिनापुर मे एक ब्राह्मण के घर मे, पुष्पमित्र के नाम से उत्पन्न हुए। यहाँ भी त्रिदण्डी की अवस्था मे उनका अन्त हुआ। आठवे भव मे, वे सुधर्म-देव-लोक मे गये। वहाँ की आयु पूर्ण करके नौवे भव मे चैत्य नामक गाँव मे एक धर्मप्रेमी ब्राह्मण के घर अग्निप्रद्योत नाम से पुत्र-रूप मे उत्पन्न हुए। यहाँ भी उन्होने त्रिदण्डी का जीवन व्यतीत किया। दसवे भव मे, ईशान-नामक स्वर्ग में, वे देव बने। वहाँ से चलकर ग्यारहवे भव मे भगवान् अग्नि-भूति नामक ब्राह्मण हुए। बारहवे भव मे, तीसरे देव लोक में वे देव हुए। वहाँ से श्वेताम्बरी नगरी मे उन्होने एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया। यह भगवान का तेरहवाँ भव था। यहाँ आपका नाम भारद्वाज रक्खा गया था। यहाँ की आयु पूर्ण कर चौदहवे भव मे चौथे स्वर्ग के देवत्व को उन्होने प्राप्त किया।

पंद्रहवे भव मे, राजगृह क ब्राह्मण कुल मे जन्म धारण किया। बहा वे स्थावर नाम से प्रसिद्ध हुए। सोलहवे भव मे, ब्रह्मदेव लोक मे वे एक देव हुए। वहाँ से सत्रहवे भव मे राजगृह के राज्य-कुल में, विश्वभूति के नाम से प्रभु विख्यात हुए। विश्वभूति ने सभूति मुनि के पास दीक्षा धारण की थी। क्रोध के आवेश मे इन्होने आलोचना नही की। वहाँ से आयु पूर्ण कर अठाहरवे भव मे शुक्र नामक स्वर्ग मे उत्पन्न हुए। वहा से मृत्यु पाकर उन्नीसवे भव मे पोतनपुर निवासी त्रिपृष्ठ नामक वासुदेव वे हुए।

एक बार अश्वग्रीव नामक प्रति वासुदेव ने, जो कि उस समय त्रिखण्ड भारत का अधिनायक था। उसने त्रिपृष्ठ वासुदेव और अचल वासुदेव के पिता को यह आज्ञा दी, कि तुम तुंग-गिरि मे सिह द्वारा होने वाले नागरिकों के कष्टो को रोको। इस आज्ञा को पाकर त्रिपृष्ठ कुमार ने प्रश्न किया कि सिह के पास कितने आदमी है ? एक भी नही ! लोगो ने कहा। फिर मेरे साथ इतनी बडी सेना की क्या आवश्यकता है ? कुमार ने कहा। इसके बाद कुमार ने सब शस्त्रधारियो को ठहर जाने का आदेश दिया। आप स्वय अपने भाई के साथ रथारूढ होकर आगे बढे। अत मे अपने भ्राता व सारथी को भी छोड दिया। जाते-जाते आप शेर की गुफा मे पहुँच गये। सिह को ललकारा। सिह भी कन्दरा को प्रतिध्वनित करता हुआ कुमार के सामने

नोट—इन गणनीय भवो मे, अन्य भव भी उनके हुए है। परन्तु यहाँ पर हम भावी भगवान् महावीर के मुख्य गणनीय भवो का ही उल्लेख कर रहे है।

आया। कुमार ने सिह को नि शस्त्र देखकर अपने पास के शस्त्रास्त्रो को फैंक दिया। तब कुमार ने अपने दोनो हाथो से सिह को जबडो के बल पकडकर बीच से चीर डाला।

इसके बाद अत्याचारी अश्वग्रीव को पद-दलित कर त्रिपृष्ठ वासुदेव तीन खण्ड के अधिपति बने। एक बार जब त्रिपृष्ठ वासुदेव पुष्पशय्या पर शयन कर रहे थे, तब गान-विद्या विशारद गन्धर्व लोग गायन कर रहे थे। शय्यापालक को यह आज्ञा प्रदान की गई थी कि जब मुझे नीद आजावे, गायन बन्द करा देना। वासुदेव को नीद आगई। परन्तु शय्यापालक को गायन बडा ही मधुर प्रतीत हो रहा था। इसीलिए उसने गायन बन्द करने की आज्ञा नही दी। होते-होते प्रातःकाल तक हो गया। वासुदेव की नीद खुली। देव-दुर्विपाक से उस समय शय्यापालक की महानिद्रा का प्रादुर्भाव होने वाला था। जब वासुदेव ने गायक मण्डली को संगीत मे लीन देखा, तो शय्यापालक से पूछा कि गायन अब तक क्यों हो रहे हैं, तुमने इन्हे बन्द क्यों नही करवाया? इस पर शय्यापालक ने कहा—ये गायन मुझे बडे ही कर्णमधुर प्रतीत हो रहे थे, बस इसीलिए मैने इन्हे बन्द नही करवाये।

यह बात सुनकर वासुदेव के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने आज्ञा दी कि शय्यापालक के कानो मे गरम शीशा उडेल दिया जावे। उस आज्ञा का यथाविधि उसी समय पालन किया गया। शय्यापालक 'हा!' कहते मे ही छटपटा कर प्राण विहीन हो गया।

॥ २१ ॥

भले-बुरे सभी कर्मों का फल एक-न-एक दिन सभी को भोगना पडता है। त्रिपृष्ठ वासुदेव वहाँ से मर कर सातवे नरक मे गये। यह भगवान् का बीसवा भव था।

सातवें नरक का आयु पूर्ण कर इक्कीसवे भव मे, सिह के रूप मे वे उत्पन्न हुए। वहा से, विदेह के अन्तर्गत मूका नगरी मे धनजय राजा के यहा उन्होने जन्म धारण किया। यह भगवान् का २२ वा भव था। वहा इनका नाम पोट्टिल था। आगे चल कर, यहो पोट्टिल चक्रवर्ती राजा हुए। अन्त में आपने-अपने राज्य की बागडोर अपने पुत्र के हाथो सौप कर भागवती दीक्षा धारण की। जप-तप और सयम की खूब आराधना की। अन्त समय में, आयु पूर्ण होने पर चौबीसवे भव मे महाशुक्र स्वर्ग मे वे देव बने। वहा से, आयु पूरी होने पर, छत्रा नामक नगरी के राज-घराने मे उनका जन्म हुआ। इनका नाम यहा नन्दन था। यह भगवान् का पच्चीसवा भव था। वहा जब आप किशोर अवस्था को पार करके यौवन अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, तब इनके पिता ने इनके कन्धो पर राज्य का भार रख कर, दीक्षा धारण की। कुछ वर्षो के बाद नन्दन ने भी सम्पूर्ण सासारिक वैभव से नेह नाता तोड कर पोट्टिलाचार्य के पास जा दीक्षा धारण की। इसी भव में तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने के बीस बोलो में से अनेक बोल का सेवन कर, तीर्थङ्कर गोत्र उन्होने बांधा। अन्त में पूरे साठ दिन का सथारा करके दसवे स्वर्ग मे पधारे।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे

॥ २२ ॥

पक्खे आसाढसुद्धे तस्सणं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजय पुप्फुत्तरपवर-
पुंडरियाओ महाविमाणओ वीसं सागरोवमट्ठियाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं
अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बूद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढ भरहे इमीसे ओस-
प्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए १ सुसमाए समाए विइक्कंताए २ सुसम-
दुसमाए समाए विइक्कंताए ३ दुसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए सागरोवमकोडा-
कोडीए बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए पंचहत्तरिवासेहिं अद्धनवमेहियमासेहिं सेसेहिं-
इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं दोहि य हरिवंसकुल-
समुप्पन्नेहिं गोयमसगुत्तेहिं, तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिं समणे भगवं महावीरे
चरिमे तित्थयरे पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स
कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकाल-
समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुव्वागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीर-

॥ २३ ॥

वक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

भावार्थ–भावी भगवान् महावीर उस, ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास और अष्टम पक्ष अर्थात् आषाढ शुक्ल षष्ठी की रात मे दसवे स्वर्ग के महाविजय प्रवर पुण्डरीक विमान से बीस सागरोपम की देव आयु, देव स्थिति और देव भव का क्षय करके इसी जम्बू-द्वीप के दक्षिण भारत मे अवसर्पिणी काल के सुखमासुखम प्रथम आरा, सुखम द्वितीय आरा, सुखमादुखम तृतीय आरे के बीतने पर और दुखमासुखम चतुर्थ आरे के बयालीस हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम का अधिकाश भाग व्यतीत हो जाने पर अर्थात् चतुर्थ आरे के केवल पचहत्तर वर्ष और साढे आठ मास शेष रहते भगवान् ने इस धराधाम को पवित्र बनाया ।

इक्कीस तीर्थङ्कर काश्यप गोत्री हुए । दो हरिवंश कुल मे उत्पन्न हुए । यो तेवीस तीर्थङ्करो के हो जाने के पश्चात्, भूतकाल के तीर्थङ्करो द्वारा निर्दिष्ट चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर महाणकुंडनगर मे कोडाल गोत्री ऋषभदत्त ब्राह्मण की स्त्री जालधर गोत्री देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे मध्यरात्रि के समय, जबकि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र चन्द्र के साथ योग कर रहा था, देव सबधी आहार, भव और देह त्याग कर गर्भ रूप में पधारे ।

मूल–समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि हुत्था । चइस्सामिति जाणइ,

चयमाणे न जाणइ, चुएमि त्ति जाणइ । जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधर सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहिरमाणी २ इमेयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगले सस्सिरीए चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धा । तं जहा–गय[1], वसह[2], सीह[3], अभिसेयं[4], दाम[5], ससि[6], दिणयरं[7], झयं[8], कुभं[9], । पउमसरं[10], सायर[11], विमाण-भवणं[12], रयणुच्चयं[13], सिहिं च[14] ।

भावार्थ–श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी तीन ज्ञानयुक्त थे । अवधिज्ञान के प्रभाव से, अमुक समय चऊंगा, ऐसा जानते है और चव रहे हो, उस समय नही जान सकते । क्योंकि चवनेका समय वहुत सूक्ष्म है । चव कर आने के बाद, जान लेते है, कि मै अमुक स्थान से चवकर आया हूँ । जिस रात्रि मे भगवान् महावीर जालधर गोत्रा देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे पधारे उस रात्रि को देवानन्दा कुछ अर्द्ध निद्रित, अवस्था मे थी । उस समय, उसे हाथी, वेल, सिह, लक्ष्मी, फूलो की माला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कुभ, पद्म-सागर, विमान, भवन, रत्नो का ढेर, और अग्नि-शिखा इस प्रकार चवदह बड़े सुन्दर कल्याणकारी एव मंगलमय स्वप्न दिखाई दिये ।

मूल—तए णं सा देवानन्दा माहणी इमे एयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीयमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकदंबपुप्फविवसमुस्ससिय-रोमकूवा सुमिणुग्गहं करेइ सुमिणुग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरिअमचवलमसंभंताए रायहंससरिसीए गईए, जेणेव उसभदत्ते माहणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिंकट्टु एवं वयासी—

भावार्थ—तब देवानन्दा इस प्रकार मुन्दर चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् जागृत हुई। वह अत्यन्त हर्षित हुई। जैसे जल की धारा को पा कदम्ब का पुष्प प्रफुल्लित हो उठता है, वैसे ही देवानन्दा का रोम-रोम हर्ष के कारण नाच उठा। स्वप्नो को ध्यान मे रखकर शय्या से वह उतरी। फिर, राजहस की गति से धीरे-धीरे ऋषभदत्त जहा सोये हुए थे, वहाँ वह आई, और अत्यन्त धीमो तथा मधुर ध्वनि से उन्हे जगाकर, उनकी जय-

॥ २६ ॥

विजय की, तव वह भद्रासन पर बैठा। थोडी देर के पश्चात् अपने दोनो हाथ जोड वह इस प्रकार बोली—

मूल—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहरिमाणी २ एमेयारूवे उराले जाव सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा। तं जहा, गय जाव सिहिं च। एएसिं देवाणुप्पिया उरालाणं जाव चउदसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्ठ सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए धाराहयकयंबपुप्फं विव समुस्ससियरोमकूवे सुमिणुग्गहं करेइ करित्ता ईहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ २ त्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी।

भावार्थ—हे देवानुप्रिय ! आज मै जव अर्द्ध निद्रित अवस्था मे सोई हुई थी, उस समय वहुत ही सुन्दर और लाभदायक हाथी, वृषभ आदि के चौदह शुभ स्वप्न मुझे दिखाई दिये। हे प्राणनाथ ! इन परम पवित्र स्वप्नो का मुझे कौनसा फल प्राप्त होगा ? यूं देवानन्दा द्वारा उन परम पवित्र स्वप्नो का वर्णन सुनकर ऋषभ-

दत्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ । फिर उन स्वप्नो के भावो को ईहा एव बुद्धि-विज्ञान द्वारा सोच समझ व अर्थ निश्चित कर देवानन्दा से यूं वोला—

मूल—ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरिया आरुग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाण मंगलकारगाणं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तं जहा-अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणप्पमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुन्दरगं ससिसोमाकारं कतं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ।

भावार्थ—हे देवानुप्रिये ! तुमने बडे कल्याणकारी शुभदायक, मङ्गलमूल, आरोग्य-वर्द्धक और दीर्घायु प्रदाता स्वप्न देखे है । इन स्वप्नो के प्रभाव से शीघ्र हो तुम्हे परम अर्थ, भोग और सुख की प्राप्ति होगी । तुम नव मास और साढे सात रात्रि व्यतीत होने पर, एक बडा ही सुन्दर सुकुमाल सर्वाङ्गपूर्ण, शुभ लक्षण एवं व्यंजन-

युक्त, मानोपमान सहित शरीरवाला एक पुत्र-रत्न प्रसव करोगी ।

चक्रवर्ती और तीर्थंकरो के छत्र चामर आदि पूरे एक हजार और आठ लक्षण होर्ते है । वैसे ही बलदेव और वासुदेव के एकसौ आठ शुभ लक्षण होते हैं । और पुण्यवान् पुरुष ऐमे ही बत्तीस शुभ लक्षणो से सम्पन्न होते है । वे इस प्रकार है —

छत्र, कमल, धनुष, रथ, वज्र, कच्छप, अकुश, वापिका, स्वस्तिक, तोरण, सरोवर, केशरोसिह, वृक्ष, चक्र, शख, हाथी, समुद्र, कलश, महल, मत्स्य, यव, यज्ञस्तंभ, स्तूप, कमंडल, पर्वत, चमर, दर्पण, वृषभ, पताका, लक्ष्मा, अभिषेक, माला और मयूर ।

शरीर मे, सात रग की वस्तुओ मे से लाल रग की ये वस्तुए शुभ मानी जाती है—नख, चरण, हथेली, जिह्वा, ओठ, तलुवा, और नेत्र के कोने ।

मूल—से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते रिउव्वेय जउव्वेय सामवेय अथव्वणवेयइतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए, संखाणे सिक्खाणे सिक्खा- ॥ २६ ॥

कप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अन्नेसुय बहुसु बंभन्नएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिनिट्ठिए आवि भविस्सइ ।

भावार्थ—वह बालक अपना शिशु-जीवन व्यतीत कर आठ वर्षो का होजाने पर, ज्ञान और कला मे निष्णात होगा । तरुणाई पाकर वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास, निघण्टु आदि के रहस्यो सहित चारो वेदो का जानकार बन जावेगा । उसकी स्मरणशक्ति और मेधा बडी ही प्रखर होगी । जो भी ज्ञान वह सीखेगा, सुनेगा उसे सदा स्मृति मे रखनेवाला पारगामी, विपरीतार्थको के मुंह बन्द करनेवाला, षडग-निष्णात, गणित, शिक्षा, उपदेश, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और न्याय आदि अन्य अनेको ब्राह्मण-शास्त्रो के गूढ अर्थ का पूर्ण जानकार होगा ।

मूल—तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, जाव आरुग्गतुट्ठिदीहाउय मंगल कल्लाणकारगाणं तुमं देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ति कट्टु भुज्जो २ अणुवूहई ।

भावार्थ—हे देवानुप्रिये ! तुमने जो परम कल्याणकारी स्वप्न देखे है, उनका प्रभाव उत्कृष्ट और तत्काल फलदायक है । उनके प्रभाव से शरीर की निरोगता. नैमित्तिक आयु को अखण्डता और दीर्घजीवन की प्राप्ति होगी । वे मगल और कल्याण की प्राप्ति के सूचक है । हे देवानुप्रिये ! इस सम्बन्ध मे और अधिक क्या

॥ ३० ॥

कहा जाय ! तुमने परम अनूठे और मगलकारी स्वप्न देखे है ।

मूल—तएणं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अन्तिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया जाव करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी ।

भावार्थ—तत्पश्चात् अपने पति, ऋषभदत्त ब्राह्मण द्वारा उन स्वप्नो का अर्थ सुन और समझ तथा ध्यान मे रखती हुई वह ब्राह्मणी अत्यन्त ही हर्षित हो उठी और अपने दोनो हाथो को जोड उनका आवर्तन कर, मस्तक पर रखती हुई अपने स्वामी से इस प्रकार बोली—

मूल—एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सव्वेणं एसमट्ठे, से जहेयं तुज्झे वयह ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइरत्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग भोगाइं भुंजमाणी विहरई ।

भावार्थ—हे देवानुप्रिय ! आपने जो स्वप्नो का अर्थ बतलाया है वह सर्वथा सत्य, तथ्यरूप, कभी झूठ न होने वाला और सदेह रहित है । यह अथ मुझे बडा हो प्रिय है । यो कहकर उस अर्थ को ध्यान मे रखती हुई अपने पति के साथ वह प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवई एरावण-वाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमाउडे नवहेमचारुचित्त चंचल कुंडलविलिहि-ज्जमाणगल्ले महिढ्डीए महज्जुइए महावले महाबसे महाणुभावे महासुक्खे भासुरबुंदी पलंबवणमालधरे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगे विमाणे सुहम्माए सभाए सक्कंसि सीहा-सणंसि, सेणं तत्थ बत्तीसाए विमाणवाससयसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणिआणं सत्तण्हं अणीयाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाणं देवीणं य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं

महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारमाणे पालेमाणे, महया हयनट्टगीयवाइयतंतीतलता-लतुडियघणमुइंगपडुपडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरई ।

भावार्थ—उस समय स्वर्ग मे देवताओ के अधिनायक, शक्रेन्द्र शासन कर रहे थे । उनके हाथ मे वज्र होता है । वे दैत्यो के नगर का नाश करने वाले है । पूर्व भव मे, उनने सौ बार पड़िमा आराधी थी । इसी से उनका नाम शतक्रत है । कार्तिक के भव मे, जो पडिमा उन्होने आराधी था और उस समय जो घटना घटी थी वह इस प्रकार है—

एक बार, कोई सन्यासी उस नगर में आया । वहा के राजा तथा प्रजा सभी उसके भक्त होगये । परन्तु कार्तिक सेठ सच्चे जैनधर्म का आराधक था । सन्यासी ने राजा को आदेश दिया कि कार्तिक को बुला भेजो । राजाने, उसे बुलाते समय राज्य-प्रासाद के प्रधान द्वार की छोटी खिडकी का प्रबन्ध किया । जिसमें प्रवेश करने पर सिर झुकाना आवश्यक हो जाता है । किन्तु कार्तिक चतुर था । इस चाल को वह ताड गया । उसने पहले अपने पैरो को खिडकी मे रक्खे फिर अपने शरीर को रक्खा । इससे सन्यासी समझ गया, कि वह मेरे साथ विनय-पूर्वक पेश आना चाहता ही नही है । उसी समय, उसने राजा से कहा, कि मै इसको पीठ पर उष्ण खीर की थाली रखकर पारणा करूंगा । राजा ने सन्यासी की बात स्वीकार कर ली । सेठ को राजाज्ञा सुनादी गई जिसका पालन सेठ को करना ही पडा ।

सेठ ने विचार किया कि यदि पहले भिक्षु बन जाते, तो ऐमा व्यवहार नही होता, अस्तु । अब भी कुछ नही बिगडा है । उसने अपने पुत्र को अपनी गृहस्थी का सारा भार सौप अपने पाँच मित्रो सहित, भगवती जिन दीक्षा स्वीकार करली । ये सब मुनि शक्र के आधीन मत्री-रूप मे देव हुए और कार्तिक सेठ शक्रेन्द्र हुआ । इसी से इनको सहस्राक्ष कहते है । मघा नाम के बडे देव इनके वश मे होने से, इन्हे मघवा भी कहते है । पाक नामक देव पर शासन करने से, ये पाकशासन भी कहलाते है ।

इन्द्र दक्षिणार्द्ध लोक और सुरो के अधिपति, बत्तीस लाख विमानो के स्वामी, ऐवरात हाथी की सवारी करने वाले, रज–रहित प्रधान वस्रो को धारण करने वाले और योग्य स्थान प॰ माला और मुकुट के पहनने वाले है । सुवर्ण के नवीन बने हुए सुन्दर और चचल चित्त के समान चलायमान, कुण्डल की जोड़ी से जिनके कोमल कपोलो पर प्रभा पडती है और जो बडी भारी ऋद्धि और द्युति के धारण करने वाले है, जो बड़े बलवान्, यशस्वी महानुभाव और सुखी जीवन बिताने वाले है और जिनकी देह देदीप्यमान है, जिनके गले में लटकती हुई माला है, जो सुधर्म देवलोक के सुधर्मविमान की सुधर्म-सभा के शक्रसिहासन पर विराजित शक्रेन्द्र है, जो वे बत्तीस लाख विमानो, चौरासी लाख सामानिक देवो, तेतीस लाख त्रायस्त्रिसक देवों, चार लोकपालों (सोम, यम, वरुण और कुबेर) सोलह हजार देवियो के परिवार सहित आठ अग्रमहीषियों, (पद्मा, शिवा, शची, अजु अमला, अप्सरा, नवमिका, और रोहिणी) बाह्य मध्यम एव आभ्यन्तर यूँ तीन परिषदा गन्दर्भ, नाटक,

अश्व, गज, रथ, सुभट, वृषभ और इनके सेनापति, जो प्रत्येक दिशा मे आत्म-रक्षा करते है, और चौरासी हजार देवताओ व देवियो से युक्त शक्रेन्द्र महाराज अग्रसरपन व पोषकपन करते हुए अपने सेनापतियो को आज्ञा देते हुए, नाट्य, सगीत, एव वाद्य का आनन्दानुभव करते हुए इन्द्रलोक मे रहते है।

मूल—इमं च णं केवलकप्पं जम्बुदीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ विहरइ, तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहवासे दाहिणड्ढभरहे माहणकुंडगामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए नंदिए परमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयकयंबसुरभिकुसुमचंचुमालइयऊससियरोमकूवे वियसियवरकमलनयणवयणे पयलियवरकडगतुडियकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता वेरुलियवरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोवियमिसिंत मणिरयणमंडियाओ पाउयाओ उमुयइ २ त्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलिमउलिअग्ग-

हत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ २ त्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

भावार्थ—सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को अपनी विस्तीर्णमति और अवधिज्ञान के द्वारा देखता हुआ इन्द्र उस समय जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध भरत मे ब्राह्मणकुंड-ग्राम, नगर में कोडालगोत्री, ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालधर गोत्री देवानन्दा ब्राह्मणी की कोख मे भावी भगवान् महावीर को गर्भ मे आया देख, बड़ा ही हर्षित हो उठा। उसके हृदय से अपार प्रीति आनन्द और हर्ष की पाप-नाशिनी त्रिवेणी फूट निकली। जैसे वर्षा को पाकर कदम्ब के फूल खिल उठते है, वैसे ही इन्द्र की सम्पूर्ण रोमराजि विकसित हो उठी। नयन कमल के समान प्रफुल्लित हो गये। यो हर्षित होता हुआ और कड़े, कंकण, पहुची, कुण्डल व मोतियो की माला अदि आभूषणो को धारण कर इन्द्र शीघ्र ही आदर पूर्वक सिहासन और पादपीठ से नीचे उतर पडा। वैडूर्य अरिष्ट, अञ्जन आदि रत्नो से, चतुर कारीगरो द्वारा निर्मित पदत्राण [उपानह-जूते] उसने उतारे। दुपट्टे से उत्तरासन कर, अर्थात् मुह की यत्ना करके और दोनों हाथ जोड, तीर्थंकर देव की ओर वह सात आठ कदम चला। फिर वाम घुटना उंचा करके और दक्षिण घुटना नीचाकर अर्थात् धरती पर टेक तीन बार मस्तक को जमीन पर

॥ ३६ ॥

लगा, आभूषणो से भूषित भुजाओ को ऊंचाकर दोनो हाथो को मस्तक पर लगा शक्रेन्द्र यूं बोलने लगा ।

| इति द्वितीया वाचना समाप्त |

मूल—नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टीणं दीवोत्ताणं सरणगईपइट्ठा अपडिहयवरनाणदंसणधराणं वियट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं !

॥ ३७ ॥

भावार्थ—घातिकर्म के घातक अरिहत भगवत को नमस्कार हो । वे धर्म को आदि करने वाले, साधु साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ के सस्थापक, विना ही किसी गुरु के उपदेश के स्वयमेव बोधिवन्त, पुरुषो-

त्तम, नरसिह, अलिप्तादि गुणसे पुरुषो मे प्रधान और पौड्रिक कमल एवं गन्धहस्तिके समान, अप्राप्त आत्म-गुणो को प्राप्त करने से जिनेश्वर, प्राप्त गुणो के रक्षक होने से लोकनाथ, 'मा हणो मा हणो' इस सद्बोध को करने षट्काय-रूप लोक के हितकारी, भव्यात्मा के हृदयगत मिथ्यात्वरूपी अधकार को नाश करने मे, लोको के दिव्य दीपक जगत्, व्यापक अन्धकार के नाश करने मे प्रद्योतक, सातो भयसे पीडित जीवो के भयनाशक, अभयदानी, ज्ञान रूपी नेत्रो के दाता, ससार अटवी मे भटकते हुए जीवो को मुक्ति के राज-मार्ग पर लगाने वाले, शरणागतवत्सल, सयमरूप-जीवितव्य, बोध-बीज-सम्यक्त्व, श्रुत और चारित्र धर्म के प्रदाता, धर्म की देशना करनेवाले, एव धर्म के नेता है। चारो गति का अन्त करनेवाले, भव-सागर मे गिरे हुए प्राणियो के शरणभूत द्वीप, अप्रतिहत, प्रधान, केवल ज्ञान और केवल-दर्शन धारक, रागादि शत्रुओ के स्वय विजेता, और अन्यान्य जीवो को उनके जीतने को युक्ति सुझानेवाले, भवसागर तारण—तरण, स्वयं तत्वज्ञ और अन्यो को तात्विक बनाने वाले, मोहबधन से स्वय मुक्त और अन्यो को मुक्त करनेवाले, सर्वदर्शी, उपद्रव, रोग, अन्त जीवन-मरण, बाधा और पीडा रहित, जहा से लौटकर आने का काम नही, ऐसी मोक्षगति को प्राप्त हुए, उन्हे हमारा नमस्कार हो।

मूल—नमुत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स चरमतित्थयरस्स पुव्व-

तित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए पासइ मे भगवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ सिंहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने । तएणं तस्स सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो अयमेवारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था ।

भावार्थ—नमस्कार हो श्रमण भगवत महावीर स्वामी को, जो धर्म के आदि प्रवर्तक और चरम तीर्थङ्कर, जिनके पूर्व मे बन्धा हुआ तीर्थङ्कर पद और वे मोक्ष मे पधारनेवाले है उन महापुरुष को नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! आप तो वहाँ विराजते हो और मै यहा से आपको नमस्कार एव वंदन करता हूँ । आप सर्वदर्शी के नाते मेरा नमस्कार वही स्वीकार करले । इस प्रकार श्रमण भगवत के प्रति नतमस्तक होकर वह इन्द्र सिहासन पर पूर्व की ओर मुँह किये बैठ गया । तत्पश्चात् उस शक्रेन्द्र के दिल मे इस प्रकार अध्यवसाय (चिन्ता—सकल्प) उत्पन्न हुआ ।

॥ ३९ ॥

मूल—न खलु एयं भूयं न एवं भव्वं न एयं भविस्सं, जं णं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा वलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा जाव भिक्खायरकुलेसु वा माहणकुलेसु वा

आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा ।

भावार्थ—ऐसा न तो कभी हुआ ही, न आज हो ही रहा है, और न ऐसा कभी होगा ही कि जो अरिहंत यावत् चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अन्त कुल भिक्षुक, ब्राह्मण या वैश्यकुल मे जन्मे और न कभी जन्मे होगे । क्योकि क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर, इन्हे प्राय राज्य करना होता है ।

मूल—एवं खलु अरहन्ता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्नकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुले वंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा ।

भावार्थ—अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव, निश्चय ही उग्रकुल, भोगकुल, राजकुल, इक्ष्वाकुकुल, क्षत्रियकुल, यादवकुल आदि आदि विशुद्धकुल, एव जातियो मे जन्मे, जन्मते और आगे भी जन्मेंगे !

मूल—अत्थि पुण एसे विभावे लोगच्छेरयभूयो अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं ओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ ।

॥ ४० ॥

भावार्थ—यदि ब्राह्मणादि कुलमे जन्म ले लिया, तो यह होनहार और आश्चर्यकारी है। ऐसा आश्चर्य अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के व्यतीत होजाने पर, कभी कभी हुआ करता है।

मूल—नामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं जं णं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा अन्तकुलेसु वा जाव माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा णो चेव णं जोणी जम्मणानिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा।

भावार्थ—नाम, गोत्र और कर्म के क्षय न होने, उन कर्मो के न वेदने और उनको निर्जरा न होने, तथा, उन कर्मो के उदय हो जाने पर जो भी अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अन्तकुल, भिक्षुक तथा वैश्य आदि कुलो की कुक्षि मे आये, आते है या आवेगे, तब ऐसा कभी नही हो सकता, कि वे उन जातिकी योनियो द्वारा ही प्रादुर्भूत जगत मे हो। क्योकि ससार मे न कभी ऐसा हुआ, होता है और होगा ही।

मूल—अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडगामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधर-

सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

भावार्थ—और यह भावी भगवान्, महावीर स्वामी, जम्बूद्वीपी भरत क्षेत्र के, महाणकुण्ड गाव मे कोडालगोत्री, ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर, जालधरगोत्री देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ मे पधारे है ।

मूल—तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं, अरंहते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अन्तकुलेहिंतो जाव किवणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु विसुद्धजाइ-कुलवंसेसु जाव रज्जसिरिं कारेमाणेसु पालेमाणेसु साहराविक्तए, तं सेयं खलु मम वि समणं भगवं महावीरं चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविक्तए । ॥ ४२ ॥ जे विय णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधर-सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविक्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता हरिणेगमेसिं

पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासो ॥२८॥

भावार्थ—तब कि चरम तीर्थंकर भगवान महावीर, महाणकुण्ड ग्राम के निवासी ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवानन्दा की कुक्षि से क्षत्रियकुण्ड ग्राम के निवासी ज्ञातकुल के क्षत्रिय सिद्धार्थ राजा को धर्मपत्नी त्रिशला के कुक्षि मे साहरण कर दिया जाय, और त्रिशला रानी का गर्भ देवानन्दा की कुक्षि मे साहरण हो जाय, ऐसा विचारकर हरिणगमेषी देव को बुलाकर इन्द्र यो बोला—

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया ! न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं णं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा जाव भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा ३, एवं खलु अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्ग कुलेसु वा जाव हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा ॥३॥

भावार्थ—देवानुप्रिय हरिणगमेषी देव ! न ऐसा कभी हुआ, न हो रहा, और न होगा कि अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव, अन्तकुल या भिक्षु आदि कुलो मे जन्म लेते है। प्रत्युत उग्रकुल, हरिवंशकुल, क्षत्रियकुल राजकुल आदि मे हो जन्म लेते है, जिनके लिए जहा राज्याधिकार हो।

॥ ४३ ॥

मूल—अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं, जं णं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा जाव भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा ४, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा ॥४॥

भावार्थ—प्रिय हरिणगमेषी देव ! कभी ऐसा होता नही, और यदि कभी ऐसा हो भी गया तो उनको आश्चर्यभूत समझो । अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के बीत जाने पर और जिसके नाम, गोत्र, कर्म क्षय नही हुआ है, एव जिसने वेदा और निर्जरा नही है । प्रत्युत जिसके उदय भाव मे आगया है वह अन्तकुल यावत् भिक्षुकुल मे आ भी गया तो उसका योनि द्वारा जन्म नही होता है ।

मूल—अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

भावार्थ—प्रिय देव ! और यह श्रमण भगवत महावीर स्वामी इसी जम्बूद्वीपी भारत के माहणकुण्ड गाव मे कोडालगोत्री ऋपभदत्त की धर्मपत्नी देवानदा की कुक्षि मे पधार गये है ।

मूल—तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अन्तकुलेहिंतो जाव माहणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा जाव हरिवंसकुलेसु वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु साहरावित्तए ।

भावार्थ—प्रिय हरिणगमेषी देव ! तब भूत वर्तमान और भविष्य के इन्द्रों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अरिहत को तथा प्रकार के अन्त कुल यावत् भिक्षुकुल से, प्रधान कुल, क्षत्रिय कुल आदि में साहरण कर देते है ।

मूल—तं गच्छ णं तुम देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गामाओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स

॥ ४५ ॥

भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधर-सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता मम एयमाणतियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ॥

भावार्थ–देव ! तुम जाओ और श्रमण भगवत, चरम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी को, पूर्व भव में तीर्थङ्कर गोत्र मे बधने के कारण ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नि, देवानन्दा की कुक्षि से साहरण कर, क्षत्रिय कु ड नगर में, सिद्धार्थ राजा के घर, त्रिशला रानी की कुक्षि मे रखदो और उसी रानी के गर्भ को साहरण कर देवानन्दा को कुक्षि मे धर दो, फिर शीघ्र ही आकर इसकी सूचना मुझे दो।

मूल–तएणं से हरिणगमेसी पायत्ताणीयाहिवईदेवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्तेसमाणे हट्ठे तुट्ठे जाव हय हियए करयल जाव त्ति कट्टु एवं जं देवो आणवेइत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाउ पडिनिक्खमइ २ त्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता वेउव्वियस्समुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तं जहा रयणाणं वइराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं

मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं रयणाणं जायरूवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ २ त्ता अहासुहुमे पुग्गले परियाएइ २ त्ता दुच्चंपि वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीइवयमाणे २ त्ता तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव जंबूदीवे दीवे भारहेवासे जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव उसभ-दत्तस्स माहणस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ २ त्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ २ त्ता असुभे पुग्गले अवहरइ २ त्ता सुभे पुग्गले पक्खिवइ २ त्ता अणुजाणउ मे भगवं तिकट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं करयल संपुडेणं गिण्हइ २ त्ता जेणेव खत्तियकुंडग्गासे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स

गिहे, जेणेव तिसलाए खत्तियाणी, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ २ त्ता, असुहे पुग्गले अवहरइ २ त्ता सुहे पुग्गले पक्खिवइ २ त्ता, समणं भगवं महावीरं अव्वावाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ २ त्ता, जे वियणं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए साहरइ २ त्ता, जामेव दिसिं पाउभूए तामेव दिसिं पडिगए ॥२७॥

भावार्थ–तब, वह हरिणगमेषी देव शक्रेन्द्रजी की उस आज्ञा को सुनकर प्रसन्न चित्त से हाथो को जोड कर बोला–भगवन् ! ठीक है। मै आपकी आज्ञा का पालन करके अभी अभी लौटता हू। यूं कह, वह वहा से चला और ईशान कोण मे आया। वहा, वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात-योजन का, एक लम्बे दण्ड जैसा उसने अपना वैक्रिय रूप बनाया और अनेक प्रकार के रत्नों के स्थूल पुद्गलो को छोड सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण किए। दुबारा, फिर वैक्रिय समुद्घात करके, उत्तर वेक्रिय रूप बना और उत्कृष्ट, त्वरित, आदि शीघ्र देव-गति से चलकर तिरछी दिशा के असंख्य योजन द्वीप समुद्र के मध्य भाग मे होते हुए वह जम्बू द्वीपी भरत-क्षेत्र के माहणकुण्डग्राम नगरस्थ, ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर, देवानन्दा ब्राह्मणी के निकट, आया

देव ने भगवान् महावीर को नमस्कार किया। और परिवार-सहित देवानन्दा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निद्रा के वशीभूत बना, अशुभ पुद्गलों को दूर करके शुभ पुद्गलों को प्रक्षिप्त कर उसने भगवान् से आज्ञा मागी। तत्पश्चात् श्रमण भगवंत महावीर को बिना कष्ट दिये, दिव्य प्रभाव से, हाथो मे लेकर जहा क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर मे राजा सिद्धार्थ की धर्म-पत्नी त्रिशला महारानी थी, वही वह देव आया। परिवार सहित त्रिशला को अवस्वापिनी निद्रा के वशीभूत कर, और अशुभ पुद्गलों को दूर कर उसने शुभ पुद्गलो को प्रक्षिप्त किया। तथा भगवान् महावीर को बिनाही किसी बाधा के त्रिशला महारानी को कुक्षी मे रख दिया। और बदले मे त्रिशला रानी को कुक्षि का जो गर्भ था, उसे देवानन्दा ब्राह्मणी को कुक्षि मे जा धरा। इतना करके वह देव जिधर से आया था, उसी ओर चला गया।

मूल—ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जवणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए, तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मेकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविन्दे देवराया, तेणामेव उवागच्छइ २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चपिणइ।

॥ ४६ ॥

भावार्थ—तब, वह देव उत्कृष्ट, त्वरित, आदि शीघ्र देवगति से, तिरछे असंख्य द्वीप समुद्र के मध्य भाग में होता हुआ हजारो योजन ऊपर की ओर निकल गया। जहां सुधर्मदेवलोक के सुधर्म विमान मे 'शक्र' नामक सिहासन पर बैठे हुए शक्रेन्द्रजी है, उनके पास आकर, वह हरिणगमेषी देव यो बोला—स्वामिन्! आपने जो आज्ञा प्रदान की थी, उसका विधिवत् पालन मै कर आया।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आवि हुत्था, तं जहा—साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहारिएमित्ति जाणइ।

भावार्थ—श्रमण भगवान् महावीरस्वामी मति श्रुत और अवधि इन तीन प्रकार के ज्ञान से युक्त थे, इससे वे गर्भ में ही जानते थे, कि साहरण होगा। और साहरण होने के बाद भी जान लिया कि साहरण हुआ। किन्तु शीघ्र ही साहरण कर लेने की कुशलता के कारण साहरण का होना नही जान पडता है।

मूल—तेणं कालेण तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोय बहुले तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं बासीइराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसी इमस्स राइंदियस्स अन्तरावट्टमाणे हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमिसिणा सक्कवयण-संदिट्ठेणं माहणकुंडग्गामाओ नगराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए

देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थखत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए।

भावार्थ—उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के गर्भ मे आने के वाद वर्पा ऋतु का तोसरा महीना आश्विन कृष्णा १३ अर्थात् वयासो दिन के बोतने और तिरासीवी रात्रि में, इन्द्र के हितैषी और भगवान् भक्त, हरिणगमेषी देवने इन्द्र के आदेश पर ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नगर से कोडाल गोत्री ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधर गोत्री भार्या देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से भगवान् को हरण कर क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगरस्थ ज्ञात कुल क्षत्रिय काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थराजा की भार्या वासिष्ठगोत्री त्रिशला क्षत्राणी की कुक्षि मे, अर्द्ध रात्रि के समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र और चन्द्र के योग मे बिना किसी बाधा के ला रक्खा।

मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणिं

च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगले सस्सिरीए चउद्दसमहासुमिणे तिसलाए खत्तीयाणीए हडेत्ति पासित्ताणं पडिबुद्धा । तं जहा–गय जाव सिहिं च ।

भावार्थ–जिस रात्रि को देवानन्दा की कुक्षि से भगवान महावीर का साहरण कर उन्हे त्रिशला को कुक्षि मे लाकर रक्खा गया था, उसी रात्री मे देवानदा अपनी शय्या पर, अर्द्ध निद्रित अवस्था में सो रही थी। उस समय, उसे स्वप्न पडा, कि मानो उसके चौदह स्वप्नो को त्रिशला रानो हरण करके लेजा रही है । उसी क्षण वह जाग पडी।

मूल–जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणिं च णं सा तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे, बाहिराओ दूमियघट्ठमट्ठे । विचित्तउल्लोयचिल्लियतले, मणिरयणपणासियंधयारे बहुसमसुविभत्तभूमिभागे पंचवन्नसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरु पवर कुंदुरुक्क तुरुक्कडज्जंत धूवमघमघंत गंधुद्धुयाभिरामे । सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूए तंसि

तारिसंगसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणे उभओ उन्नए मज्फेण य गंभीरे, गंगा पुलिण वालुय उद्दाल सालिसए उयविय खोमिय दुगुल्लपट्टपडिछन्ने सुविरइ य रयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणगरूय बूर नवणीय तूलतुल्लफासे सुगंधवरकुसुमचुन्न-सयणोवयारकलिए, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेयारूवे उराले जाव चउद्दसमहासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा ।

भावार्थ–जिस रात्रि को, भगवान् महावीर देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला रानी की कुक्षि में पधारे, उस दिन शयनागार की योग्य शय्या, जिस प्रकोष्ठ मे थी, वह कमरा भीतर से सचित्र और बाहर सफेदी किया हुआ था। उसको सभी दिवारे आरास की हुई और सचित्र थी। प्रकोष्ठ का भूतल स्वस्तिकादि विचित्र चित्रो से युक्त एव समथर था। मणिरत्नो से वहां का अन्धकार दूर होरहा था। पाच वर्णो के पुष्प अपनी सरस सुगन्ध से उसे सुवासित कर रहे थे, कृष्णागर आदि सुगधित द्रव्यो से निर्मित्त दशाग धूप से कमरा महक रहा था। सुगधित वल्लिकाओ से भी मीठी-मीठी सुगन्ध का प्रसार हो रहा था। ऐसे कमरे मे पुण्यात्माओ के योग्य, सिर व पैरो की ओर तकियेदार, आजू-बाजू से ऊँची और बीच मे कुछ नीची, गंगा की रेती, मृग-चर्म, पीची हुई रूई, बूर, मक्खन, और आक की रुई के समान महान् मुलायम रेशमी वस्त्रों की

॥ ५३ ॥

खोल से निर्मित, सुगन्धित सुमनो और द्रव्यो से सुसज्जित, और लाल रग की मशहरी से ढँकी हुई शय्या पर त्रिशला रानी पिछली रात्रि के समय, अर्ध निद्रित अवस्था मे, सोई हुई थी। उस समय, चौदह प्रधान स्वप्नो को देखकर जागृत हुई।

मूल—तं जहा गय[1], वसह[2], सीह[3], अभिसेय[4], दाम[5], ससि[6], दिणयरं[7], ज्झयं[8], कुंभं[9]। पउमसर[10], सागर[11], विमाण-भवन[12], रयणुच्चय[13], सिहिं च[14]। तए णं सा तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए तओय चउद्दंत मूसिय गलिअ विपुल जल हर हार निकर खीर सागर ससंक किरण दग रयरयय महासेल पंडुरतरं, समागय महुयरसुगंध दाण वासिय कवोल मूलं, देवराय कुंजरवरप्पमाणं पिच्छइ। सजलघण विपुलजलहरगज्जिय गंभीर चारुघोसं इभं सुभं सव्वलक्खणकयंबियं वरोरुं।

भावार्थ—त्रिशला रानी ने गज, आदि के चौदह स्वप्न देखे। थोक पाठ के कारण, यहाँ मूल के अनुसार पहले स्वप्न मे हाथी को देखा। वह हाथी तेजवत चार दाँतो वाला, व बड़ा ही ऊँचा था। निर्जल मेघ, मुक्ताहार, क्षीर समुद्र, चन्द्र किरण, जल-विन्दु और वैताढ्य पर्वत के समान उज्ज्वल था। मद जल के कारण भ्रमर उसके गण्डस्थल पर मँडरा रहे थे। अधिक क्या, त्रिशला ने इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान ही

हाथी को स्वप्न मे देखा ।

मूल—तओ पुणो धवल कमल पत्तपय राइरेगरुवप्पभं पहासमुदओवहारेहिं सव्वओ चेव दीवयंतं अइसिरिभरपिल्लणाविसप्पंत कंत सोहंत चारुक कुहं तणुसुद्ध सुकुमाल लोम निद्धच्छविं, थिरसुबद्ध मंसलोवचियलट्ठ सुविभत्त सुन्दरंगं, पिच्छिइ। घणवट्टलट्ठ उक्किट्ठ विसिट्ठ तुप्पग तिक्खसिंगं दंतं सिवं समाणसोभंत सुद्धदंतं वसहं अमिय गुणमंगलमुंह ।

भावार्थ—हाथी देखने के बाद, त्रिशला रानी ने बैल को देखा। बैल, श्वेत कमल के समान उज्ज्वल, वडा ही देदीप्यमान, उन्नत-स्कन्ध, सुकोमल और शुद्ध रोम-राजि से युक्त और सर्वांग पूर्ण तथा हृष्ट-पुष्ट होने के कारण महान् सुन्दर एव मनोरम था। उसके सिंग वर्तुलाकर और स्निग्ध थे। सीगो का अग्रभाग तीक्ष्ण था। वडे ही सुन्दर और प्रमाणोपेत थे। वह बैल ऐसे कितने ही शुभ गुणों से युक्त और मगलमुखी था।

मूल—तओ पुणो हार निकर खीर सागर ससंक किरण दगरय रययमहासेल पंडुरतरं रमणिज्जपिच्छणिज्जं थिरलट्ठ पउट्ठ वट्ट पीवर सुसिलिट्ठ विसिट्ठ तिक्ख दाढा विड

म्मियमुंहं, परिकम्मिअ जच्चकमल कोमलपमाण सोभंतलट्ठउट्ठं, रत्तुप्पलपत्तमउअ सुकुमाल तालु निल्लालिअग्गजीहं, मूसागयपवरकणग ताविअ आवत्तायंत वट्टताडिय विमल सरिस नयणं, विसाल पीवर वरोरुं, पडिपुन्न विमलखंधं, मिउ विसय सुहु मलक्खण पसत्थ विच्छिन्न केस राडोवसोहिअं, ऊसिअ सुनिम्मिय सुजाय अप्फोडिय लंगूलं सोमं, सोमाकारं, लीलायंतं, नहयलाओ ओवयमाणं, नियगवयणमइवयंतं, पिच्छइ, सा गाढतिक्खग्गनहं, सीहं, वयणसिरी पल्लव पत्तचारुजीहं ।

भावार्थ—तत्पश्चात् त्रिशला देवी ने स्वप्न मे आकाश से उतरते, व अपने मुख में प्रवेश करते हुए एक सिह को देखा। वह सिह, मोतियों के हार के समूह, क्षीर सागर, चन्द्रमा की किरणो, जल के बिन्दु तथा चांदी के पर्वत (वैताढ्यगिरि) के समान धवल वर्णवाला अत्यन्त रमणीय और दर्शनीय था। उसके पजे स्थिर और सुन्दर थे। उसका मुख गोल, पुष्ट, परस्पर जुड़ी हुई श्रेष्ठ एव तीक्ष्ण दाढो से अलंकृत था। उसके ओठ सुसिञ्चित एव जातिवंत कमल के समान सुकोमल परिमाणयुत सुशोभित व सुन्दर थे। लाल कमल दल-समान सुकोमल तालु था लपलपाती हुई जिह्वा थी। अग्नि से तपाकर गलाए हुए, मूस मे डाले हुए स्वर्ण के समान गोल, और उज्ज्वल बिजली के समान चमकते हुए चचल उसके नेत्र थे। जघाए उसकी विशाल पुष्ट और

सुन्दर थी । कन्धे भरे हुए और श्रेष्ठ थे । उसकी अयाल (कन्ध-केसर) सुकोमल, स्वच्छ, सूक्ष्म, शुभ लक्षण-युक्त, एव विस्तृत थी । वह सिह ऊँची उठी हुई एवं कुण्डलाकार अपनी सुशोभित पूँछ को फटकारता था । यह सब कुछ उत्तम होते हुए भी, वह सिह दुष्ट एव क्रूर नही था, प्रत्युत वह उतना ही अधिक शात और सौम्य था । सुन्दर क्रीडामय गति से गमन वह कर रहा था । उसके नाखून बडे ही मजबूत और तीक्ष्ण थे । उसके चहरे को शोभित करने के लिए वृक्ष के कोमलतर पत्तो के समान फैलाई हुई उसकी जिह्वा थी । ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर सिंह को, आकाश से उतरते और अपने मुख-कमल मे प्रवेश करते हुए, त्रिशला रानी ने देखा ।

मूल—तओ पुणो पुन्नचंदवयणा, उच्चागयट्ठाण लट्ठसंठिअं पसत्थरूवं, सुपइट्ठिअ-कणगमयकुम्मसरिसोवमाण चलणं, अच्चुन्नय पीणरइअ मंसल उन्नय तणुतंव निद्ध नहं, कमल पलास सुकुमाल करचरण कोमल वरंगुलिं, कुरुविंदा वत्त वट्टाणु पुव्वजंघं, निगूढजाणुं, गयवर करसरिस पीवरोरुं चामीकर रइअ मेहलाजुत्त कंत विच्छिन्न सोणि-चक्कं, जच्चं जण भमर जलय पयर उज्जु असमसंहिअ तणुअ आइज्ज लडह सुकुमाल मउअर मणिज्ज रोमराइं, नाभीमंडल संुदर विसाल पसत्थ जघणं, करयल माइअ पसत्थ

तिवलिय मज्झं, नाणामणि कणग रयण विमल महातवणिज्जाभरण भूसण विराइ यंगोवंगिं, हार विरायंत कुंदमाल परिणद्ध जलजलितं थण जुअल विमलकलसं, आइअ पत्तिअ विभूसिएणं, सुभग जालुज्जलेणं, मुत्ताकलावएणं, उरत्थ दीणार माल विराइएणं, कंठ मणिसुत्तएण य कुंडल जुअलुल्लसंत अंसोवसत्त सोभंत सप्पभेणं, सोभा गुण समुदएणं, आणण कुडुंबिएणं, कमलामल विसाल रमणिज्ज लोअणं, कमल पज्जलंत करगहिअ मुक्क-तोयं लीलावाय कयपक्खएणं, सुविसदकसिण घणसण्हलंबंत केसहत्थं, पउमद्दहकमल वासिणिं, सिरिं, भगवइं, पिच्छइ, हिमवंतसेलसिहरे दिसा गइंदोरु पीवरकराभि सिच्चमाणिं।

भावार्थ—इसके पश्चात् पूर्णिमा के चन्द्र समान मुखवाली त्रिशलादेवी ने पद्मदह के कमल में निवास करनेवाली, हेमवंत पर्वत के शिखर पर दिगन्तों की दृढ सूंडों द्वारा अभिषिक्त भगवती लक्ष्मी को देखा।

वह मनोहर लक्ष्मी, सर्वोच्च हिमालय पर्वती पद्मदह के प्रधान कमल स्थान पर आसीन थी। उसके चरण सुस्थिर स्वर्णमय कछुए के समान मध्य मे ऊंचे और आस-पास नीचे थे। अत्यन्त उन्नत पुष्ट अंगूठों

॥ ५८ ॥

आदि पर के नख स्निग्ध एवं स्वभाव ही से ऐसे लाल थे मानो वे लाक्षादि रस से रंगे हुए अथवा ताम्रवर्णी हो, उसके हाथ-पाव कमल-दल के समान सुकोमल और अगुलिया अति ही कमनीय थी। पिंडलियां कुरुविन्द भूपण अथवा आदर्त विशेष के समान ऊपर से स्थूल और क्रमश: गोल तथा नीचे की ओर पतली होने से बड़ी ही शोभायमान थी जिनमें दोनों घुटने गुप्त थे। उसकी जघाएं ऐरावत हाथी की सूंड के समान मोटी व पुष्ट थी। कमर सुवर्णकिकिणोयुक्त, मनोहर और विस्तृत थी। उच्च जाति के अनेक अजनो, भ्रमर और घनघटा के वर्ण के समान सरल, सघन, सूक्ष्म, सुन्दर, विलासमयी शिरीष-सुमन से भी अधिक कोमल और रमणीय उसकी रोमराजी थी। उसका जघनस्थल नाभिमंडल से सुन्दर, विशाल और सुलक्षण सम्पन्न था। उसके शरीर का मध्यभाग पतला, श्रेष्ठ और त्रिवलियो (तीन रेखाओ) से युक्त था उसके अन्य अगोपांग, चन्द्र-कान्तादि मणियो, वैडूर्यादि रत्नों व पीतवर्णी स्वर्ण और स्वच्छ व उच्च जाति के लाल सुवर्ण निर्मित, अग-उपागो मे पहनने के आभरणो से सुशोभित थे। उसके स्वर्ण-कलश सदृश दोनो स्तन मोतियो के हार, और कुंद-कुसुमो की माला के धारण करने से अलकृत व दीप्तियुक्त हो रहे थे। वही लक्ष्मी देवी, समुचित-स्थान पर सुस्थापित, मरकत मय पत्रो से नयनाभिराम, उज्ज्वल मोतियो के हारो से सुशोभित थी। उसका हृदय, सोनेयो के हार और कठ मणिसूत्र से सुशोभित था। कधे को छूते हुए कानो के कुडलो से उस समय एक अपूर्व छटा छिटक रही थी जिस प्रकार राजा अपने परिजनो व सेवको से शोभा पाता है, ठीक उसी प्रकार,

॥ ५६ ॥

उस लक्ष्मी का मुखरूपी नृपति अन्य अवयवो को शोभा व गुणो से दमक रहा था। उस देवी के नेत्र, कमल के समान कोमल विशाल और रमणीय थे। उसके हस्त-ग्रहीत कमलो से मकरन्द झरता था। वह देवी केवल क्रीडा के निमित्त, स्वहस्त-स्थित ताल-पत्र के पंखे को झेल रही थी। उसका केश-पाश स्वच्छ, सघन, काला, सुचिक्कण सूक्ष्म और कमर तक लम्बायमान था। सुन्दरता की खान ऐसी लक्ष्मी देवी को त्रिशला रानी ने चौथे स्वप्न मे देखा—

मूल—तओ पुणो सरस कुसुम मंदार मणिज्ज भूयं, चंपगा सोग पुन्नागनाग पिअंगु-सिरीसमुग्गर मल्लिया जाइ जूहि कोल्ल कोज्ज कोरिंट पत्त दमणयनव मालिय वउल तिलयं वासंतिय पउमुप्पल पाडल कुंदाइ मुत्तसहकार सुरभिगंधिं, अणुवममणोहरेणं गंधेणं दसदिसाओ वि वासयंतं, सव्वेउअसुरभि सुकुममल्ल धवलविलसंत कंत बहुवन्न भत्ति-चित्तं, छप्पय महुयरि भमर गण गुम गुमायंत निलिंत गुंजंत देसभागं, दामं पिच्छइ, नहंगण तलाओ ओवयंतं।

भावार्थ—तत्पश्चात् त्रिशला रानी ने, पाचवे स्वप्न मे आकाश से उतरती हुई फूलो की एक माला देखी। वह माला मकरन्द (रसयुक्त), फूलवाले कल्पवृक्ष के पुष्पो से रमणीय, तथा चम्पा, अशोक, पुन्नाग,

॥ ६० ॥

नाग, प्रियगु, शिरीप, मुद्गर, मल्लिका, जाई, जूई, कोज, कोरट, दमनकपत्र, नवमल्लिका, बकुल, तिलक, वासती सूर्य एव चन्द्र विकासी कमलो, पाटल, कुद, अतिमुक्त तथा सहकार आदि के पुष्पो को मधुर गंध से मुगन्धित थी और अपनी अद्वितीय मनोहर मुगध से वह दसो दिशाओ को महका रही थी । वह माला सभी ऋतुओ मे उत्पन्न, सरस, मुगन्धित और पञ्चवर्णवाले पुष्पो से, जिसमे अधिकतर श्वेतवर्ण के पुष्प और यत्र-तत्र हरे, लाल पुष्प शोभा देते थे, गूथा हुई थी इससे वह वड़ी ही आश्चर्यजनक जान पड़ती थी । उसके ऊर्ध्व, मध्य और निम्न भागो मे, गुञ्जार करता हुआ और अन्य स्थानो से आकर आसक्त भ्रमरो का समूह मँडराता हुआ शोभा देता था ।

मूल—ससिं च गोखीरफेणदगरयरययकलसपंडुरं, सुभं, हिययनयणकंतं, पडिपुन्नं, तिमिर निकर घण गुहिर वितिमिरकरं पमाणपक्खंत रायलेहं, कुमुयवण-विबोहगं, निसासोहगं, सुपरिमट्ठ दप्पण तलोवमं, हंसपडुवन्नं, जोइसमुह मंडगं तमरिपुं, मयण सरापूरगं, समुद्दगपूरगं, दुम्मणं जणं दइयवज्जियं पायएहिं सोसयंतं पुणो सोमचारुरूवं, पिच्छइ, सा गगण मंडल विसालसोम चंकम्ममाणतिलयं, रोहिणि-मणहिअय वल्लहं देवी पुन्नचंदं समुल्लसंतं ।

भावार्थ—तब, छठे स्वप्न मे, त्रिशला महारानी ने चन्द्रमा को देखा। वह चन्द्रमा गाय के दूध, फेन, जलबिन्दु, तथा चादी के कलश के समान उज्ज्वल शुभ हृदय और नेत्रो को वल्लभ लगनेवाला, और षोडस कलाओ से युक्त था। अधकार के समूह से घन-गम्भीर-बन-निकुञ्ज-तम कोश नाशक, वर्ष मासादि के माप-दड, और कृष्ण पक्ष के मध्यम मे आनेवाली पूर्णिमा के सदृश रेखावान् कुमुद-वन विकास॰ रजनी-कात मँजे हुए उज्ज्वल दर्पण के समाण स्वच्छ, हस के समान धवल, ज्योतिष देव, नक्षत्र व तारागणो के मुख की अभाका विकासक, तम-रिपु, कन्दर्प-वाण-तूणोर सागर-हिय-हुसावनहार, विरह-विधुरा अबला को अपनी शीतल किरणो द्वारा सन्तप्तकारी, परम मनोहर एव सुन्दर, नभ-मण्डल के विशाल, सुन्दर एव चलन स्वभावी तिलक, रोहिणी-हिय हुलसावन हार[1] तथा देदीप्यमान था। ऐसे सम्पूर्ण सोलह कलायुक्त चन्द्रमा को त्रिशला-देवी ने देखा।

मूल—तओ पुणो तमपडलपरिप्फुडं चेव तेयसा पज्जलंतरूवं, रत्तासोग-पगास किंसुय सुय मुहगुंजद्धराय सरिसं, कमलवणालंकरणं अंकणं जोइसस्स, अंवरतलपईवं, हिमपडलगलग्गहं, गहगणोरुनायगं; रत्तिविणासं; उदयत्थमणेसु मुहुत्त सुहदंसणं; दुन्निरि- ॥ ६२ ॥

१ रोहिणी चन्द्रमा की स्त्री है ऐसी लौकिक कहावत और कवियो की कल्पना है, उसी अपेक्षा से यहा समझना चाहिए।

क्खरूवं; रत्तिमुद्धंत दुप्पयारप्पमद्दणं; सीयवेगमहणं पिच्छइ मेरुगिरिसययपरियट्टयं विसालं, सूरं, रस्सी सहस्स पयलियदित्तसोहं ।

भावार्थ—त्रिशला रानी ने तब सातवे स्वप्न मे सूर्य को देखा । वह अधकार के आवरण को दूर करनेवाला, निज तेज पुंज से स्वय प्रकाशित, तथा लाल अशोक और किशुक-कुसुम, तोते की चोच एव गुजा के अर्द्ध भाग-लाल प्रकाशवाला, कमल के वन को विकसित और सुशोभित करनेवाला, ज्योतिष चक्र का प्रमुख चिह्न रूप, आकाश का दीपक, हिम-राशि विध्वंसक, ग्रह-गण-नायक, रजनि-रिपु, केवल उदय और अस्त के समय मुहूर्तभर को सुख से दिखाई देनेवाला और शेष समय मे कठिनाई से दिखाई देनेवाला; रात के समय स्वच्छन्द विचरनेवाले चोर और अन्यायियो के भ्रमण को रोकनेवाला, शीत-वेग-मंथक, मेरू पर्वत की प्रदक्षिणा करके उसके आस-पास परिभ्रमण करनेवाला, तथा अपनी हजारो किरणों से चन्द्रादि अन्य तेजस्वी पदार्थो की कान्ति को मन्द करनेवाला था । ऐसे विशाल सूर्य को त्रिशला देवी ने सातवे स्वप्न में देखा—

मूल—तओ पुणो जच्चकणगलट्ठिपइट्ठियं, समूह नीलरत्त पीय सुक्किल सुकुमालुल्लसियमोरपिच्छकयमुद्धयं, धयं, अहियसस्सिरीयं, फालियसंखं ककुंददग रयरयय कलस पंडुरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणेण रायमाणं, भितु, गगणतलमंडलं चेव ववसिएणं,

॥ ६३ ॥

पिच्छइ, सिवमउयमारुयलयाहयकंपमाणं, अइप्पमाणं जणपिच्छणिज्जरूवं ।

भावार्थ—तत्पश्चात् त्रिशला देवी ने आठवे स्वप्न मे एक ध्वजा देखी । वह ध्वजा, उच्चजाति के एक स्वर्ण दण्ड पर स्थित थी । जैसे मनुष्य के मस्तक पर शिखा शोभती है, यूं उस ध्वज के ऊपर एक साथ मिले हुए नीले, लाल, पीले, सफेद और काले रगवाले, कुसुम माला और यत्र-तत्र फरकते हुए मोरपिच्छ-बाल के समान शोभा देते थे । वह ध्वजा अत्यधिक शोभायुक्त थी । उसके उर्ध्व भाग मे स्फटिक रत्न, शख, अक जाति के रत्न, कुंद कुसुम, जल-कण और चांदी के कलश के समान उज्ज्वल धवल वर्ण का सिह, जो अपनी अनुपम शोभा से शोभित था, चित्रित किया हुआ था । वह सिह, आकाश मण्डल को भेदने का उद्यम करता हुआ मालूम होता था । अर्थात् हवा के सपाटे से मानो वह ध्वजा, आकाश को चूमना चाहती थी । जिसके कारण उसमे चित्रित सिह भी, आकाश मे ऊँची उडाने भरता हुआ जान पडता था । वह मद-मद चलती हुई सुखकारी हवा के कारण कम्पायमान थी । ऐसी मनुज-मात्र के लिए दर्शनीय, तथा विशाल ध्वजा को त्रिशला रानी ने आठवे स्वप्न मे देखा !

मूल—तओ पुणो जच्चकंचणुज्जलंतरूवं, निम्मलजलपुन्नमुत्तमं, दिप्पमाणसोहं, कमल कलाव परिरायमाणं, पडिपुन्नयसव्वमंगल भेयसमागमं, पवर रयण परायंतकमलट्ठियं,

नयण भूसणकरं, पभासमाणं सव्वओ चेव दीवयंतं, सोमलच्छीनिभेलणं, सव्व पावपरिवज्जियं, सुभं, भासुरं, सिरिवरं, सव्वोउ असुरभिकुसुम आसत्तमल्लदामं पिच्छइ, सा रययपुन्नकलसं ।

भावार्थ—महारानी त्रिशला ने फिर नौवे स्वप्न मे सुवर्ण निर्मित उज्ज्वल और निर्मल जल से पूर्ण भरे हुए कलश को देखा । वह चारो ओर कमलो से सुशोभित, और बडा ही मंगलकारी था ।

वह कलश बहुमूल्य रत्नो द्वारा निर्मित कमल पर स्थापित किया हुआ था । वह नेत्रो को आनन्ददायक कान्तियुक्त, सम्पूर्ण दिशाओ का प्रकाशक और साक्षात् लक्ष्मी के प्रशस्त घर जेसा सत्र प्रकार के पाप और अमगलो से रहित था । इसलिए वह वडा ही शुभ, देदीप्यमान तथा अनुपम शोभाशाली था । उस कलश के कठ मे सभी ऋतुओ मे उत्पन्न सुगन्धित पुष्पो की मालाएँ शोभा देती था ।

मूल—तओ पुणो रवि किरण तरुण बोहिय सहस्सपत्तसुरभितरपिजरजलं, जलचरपहकरपरिहत्थग मच्छपरि भुज्जमाणजलसंचयं, महंतं जलंतमिव, कमलकुवलय उप्पलतामरस पुंडरीओरुसप्पमाणसिरिसमुदएणं रमणिज्जरूवसोभं, पमुइअंतभमरगणमत्तहुयारि-

गणुक्करोलिज्जमाणकमलं, कायं बकबलाहयचक्ककलहंससारसगव्वियसउणगणमिहुण-सेविज्जमाणसलिलं, पउमिणिपत्तोवलग्गजलबिंदुनिचयचित्तं पिच्छइ सा हिययनयणकंतं पउमसरं नामसरं, सररुहाभिरामं ।

भावार्थ—त्रिशला रानी ने, तब दसवे स्वप्न मे एक पद्म सरोवर देखा । वह नव उदित सूर्य की किरणों द्वारा विकसित, वडे-बडे सहस्रदल कमलो के पराग से सुगन्धित, तथा पीत रक्ताभजल से सुशोभित था । उसमे जलचरो के समूह सचार करते थे, तथा मच्छ आदि प्राणी, उसकी जलराशि का उपभोग करते थे । वह सूर्य विकासी कमल, कुवलय (नील-कमल), लाल कमल, तामरस (बड़े-बड़े कमल), पुण्डरीक (सफेद कमल), इत्यादि विविध कमलो की अति ही कमनीय कान्ति से शोभायमान मनोहारी एवं रमणीय था । प्रमत्त एव प्रसन्न चित्त भ्रमर और भवरियो के समूह उसके कमलो का चुम्बन करते हुए, पराग पान कर रहे थे । कादम्बक, बलाहक (बगुला), चक्र (चकवा), कलहंस, सारस इत्यादि भाति-भाति के पक्षी, ऐसे मनोहर स्थान को बड़े ही गर्वित हो नर-मादा के जोड़े से, उस सरोवर के सुधोपम जल का सेवन करते थे । उसमे कमलिनी के पत्तो पर पड़े हुए जल-बिन्दु नील मणियो से निर्मित आगन में जड़े हुए की आभा को भी मात करते थे । थोड़े मे वह सरोवर बडा ही नयनाभिराम हृदयाकर्षक सभी सरोवरों मे प्रधान एवं मनभावन पद्म सरोवर था ।

॥ ६६ ॥

मूल—तओ पुणो चंदकिरणरासिसरिससिरिवच्छसोहं चउगमणपवड्ढमाणजलसंचयं चवलचंचलुच्चायप्पमाणकल्लोललोलंततोयंपडुपवणाहयचलियचवलपागडतरंगरंगंत भंगखो-खुब्भमाणसोभंतनिम्मलुक्कडउम्मीसहसंबंधधावमाणोनियत्तभासुरतराभिरामं महामगर-मच्छतिमितिमिंगिलनिरुद्धतिलितिलियाभिघायकप्पूरफेणपसरं महानईतुरियवेगसमागय-भमगंगावत्तगुप्पमाणुच्चलंतपच्चोनियत्तभमभमाणलोलसलिलं पिच्छइ खीरोयसायरं सारय-रयणिकर सोमवयणा ।

भावार्थ—अब शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान सौम्य मुखवाली त्रिशला रानी ने ग्यारहवे स्वप्न मे क्षीर समुद्र का देखा । उस समुद्र का मध्य भाग चन्द्रमा की किरण जाल के समान उज्ज्वल एव शोभायमान था । उसका जल चारो दिशाओं मे बढ रहा था । बडी ही चंचल एवं उन्नत लहरे उसमे लहरा रही थी । प्रबल वायु के आघात से उठी हुई अतएव अति चचल और स्पष्ट दिखाई देती हुई उर्मियों के मिलने से किनारे की ओर दौडता और पुन लौटता हुआ वह समुद्र अति ही दीप्तिमान और हृदय को आनन्द देनेवाला जान पड़ता था । बडे-बडे मगर, मच्छ, तिमि, तिमिगल निरुद्ध, तिलि, तिलिका इत्यादि विविध जलचर प्राणियो द्वारा पूछो के पछाडने से पानी पर झाग उत्पन्न हो आते थे । जो उसके तट पर कपूर के ढेर के समान दिखाई देते

थे । यूँ गंगा, सिन्धु आदि बडी-बडी नदियो के तीव्र प्रवाहों से उत्पन्न गंगावर्तादि भँवरो से क्षुब्ध उछलते हुए एव पुनः भँवर जाल मे पडने से अत्यन्त चचल जल वाला वह क्षीरोदधि था ।

मूल—तओ पुणो तरुणसूरमंडलसमप्पभं दिप्पमाणसोहं उत्तमकंचणमहामणिसमूह-पवरतेयअट्ठसहस्सदिप्पंतनहप्पईवं, कणगपयरलंबमाणमुत्तासमुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहा-मिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिंनररुरुसरभ चमरसंसत्तकुंजरवणलयपमउमलयभत्ति-चित्तं गंधव्वोपवज्जमाणसंपुण्णघोसं निच्चं सजलघणविउलजलहरगज्जियसद्दाणुणाइणा, देवदुंदुभि महारवेणंसयलमविजीवलोयं पूरयंत कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंत धूववासं-गउत्तममघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पिच्छइ सा साती-वभोगं वरविमाणपुंडरीयं ।

भावार्थ—इसके बाद, बारहवे स्वप्न मे, त्रिशला रानी ने श्वेतपुण्डरीक कमल के समान सर्वोत्तम सुन्दर एक विमान देखा । वह विमान नवोदित सूर्य बिम्ब के समान दिव्य शोभाशाली, सोने और मणियो के जटिल जाल से महान् मनोहर, १००८ सुवर्ण स्तम्भो की झलक से नयनों को चकाचौंधिया देने वाले एवं

॥ ६८ ॥

आकाश को प्रकाशित कर देने वाले दीपक के समान था। उस पर सुवर्ण पत्रो मे लटकती हुई मोतियो की मालाएँ लटक रही थी। वह चारो ओर वृक, वल, घोडा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरीमृग, अष्टापद, चमरीगाय, ससक्त (जगल जानवर) हाथी, बनलता, पद्मलता इत्यादि के चित्रो से चित्रित था। गन्धर्वो द्वारा गाये जाते हुए गायन और बजाये जाते हुए वाद्यो की ध्वनि से वह विमान व्याप्त था। वह शाश्वत तथा जल से भरे हुए बडे भारी बादल की घोर गर्जना के समान, देवदुदुभी के गम्भीर घोप से, सारे ससार को व्याप्त करने वाला था। वह कालागुरु, श्रेष्टकुदरूक, तुरूष्क (सुगन्धित द्रव्य विशेष) तथा दशाङ्ग धूप के कारण महक रहा था जिसकी सुगन्ध दशो दिशाओ मे फल रही थी। वह बडा ही मनोहर लगता था। वह नित्य प्रकाशमान् श्वेतकान्तिमय था। सदा उत्तम जाति के देवो से वह भरा रहता था और वह सातावेदनीय कर्म के उपभोग करने का स्थान था।

मूल—तओ पुणो पुलगवेरिंदनीलसासगकक्केयणलोहियक्खमरगयमसारगल्लपवालफलिहसोगंधियहंसगब्भअंजणचंदप्पहवररयणेहिं, महियलपइट्ठियंगगणमंडलंतंपभासयंतं, तुंगं, मेरुगिरिसन्निकासं, पिच्छइ, सा रयणनिकररासिं।

भावार्थ—तेरहवे स्वप्न मे, त्रिशला रानी ने दिव्य रत्नो का एक समूह देखा। वह रत्नो की राशि, पुलक,

वज्र, हीरा, नीलमणि, सस्पक, कर्केतन, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, प्रवाल, स्फटिक, सौगधिक, हसगर्भ, अजन, चन्द्रकान्तादि श्रेष्ठ रत्नो द्वारा, पृथ्वी पर रहते हुए भी, अपनी कान्ति से, गगनमडल को प्रकाशित करती थी। रत्नो का वह समूह मेरु पर्वत के समान ऊँचा था।

मूल—सिहिं च सा विउलुज्जलपिंगलमहुघयपरिसिच्चमाणनिद्धूमधगधगाइयजलंत जालुज्जलाभिरामं, तरतमजोगजुत्तेहिं जालपयरेहिं अण्णुण्णमिवअणुप्पइण्णं पिच्छइ जालुज्जलणगअंबरं व कत्थई पयंतं अइवेगचंचलंसिहिं।

भावार्थ—चौदहवे स्वप्न मे, त्रिशला रानी ने निर्धूम अग्नि को देखा। वह अग्नि अत्यन्त विस्तृत और उज्ज्वल घी और रक्त, पीत वर्ण के मधु से सिञ्चित होती हुई, धूम्र रहित, धक्-धक् शब्द करती हुई अति ही जाज्ज्वल्यमान एवं सुन्दर थी। उसकी ज्वालाएँ क्रमश छोटी-बडी और एक दूसरे से मिली हुई थी। वे ज्वालाएँ आकाश मे ऊँची उठ रही थी। मानो वे आकाश-प्रदेश को पचाती-सी हो। उस अग्नि की ज्वालाएँ अति चचल थी।

मूल—इमे एयारिसे सुभे,सोमे, पियदंसणे, सुरूवे, सुविणे दट्ठूण,सयणमज्झे पडिबुद्धा। अरविंदलोयणा, हरिसपुलइअंगी। एए चउदससुविणे, सव्वा पासेइ, तित्थयर माया जं

रयणिं वक्कमइकुच्छिंसि महायसो अरहा ।

भावार्थ—ऐसे शुभ कल्याणकारी, सौम्य-कीर्तिकारी और जिनका देखना अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाला है, ऐसे सुन्दर स्वप्नो को निद्रा मे देखकर त्रिशला रानी जागृत हुई । उसके कमल के समान नेत्र विकसित हुए और हर्ष के कारण अग-अग पुलकित हो गया और रोमराजि विकसित हो गई ।

महायशस्वी अर्हन्त प्रभु जिस रात्रि मे माता की कुक्षि मे आते है उस रात्रि मे सभी जिनेश्वर देवो की माताएँ ऊपर कहे हुए चौदह स्वप्नो को देखती है ।

मूल—तएणं सा तिसला खत्तियाणी इमे एयारूवे उराले, चउद्दसमहासुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठजावहयहियया धाराहयकयंवपुप्फगं पिव समूस्ससियरोमकूवा सुमिणुग्गहं करेइ२त्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ२त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ२त्ता अतुरिय-मचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणज्जिे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं, पियाहिं, मण्णुणाहिं, मणोरमाहिं, उरालाहिं, कल्लाणाहिं, सिवाहिं, धन्नाहिं, मगलाहिं, सस्सिरियाहिं, हिययग-

मणिज्जाहिं, हियपल्हायणिज्जाहिं, मिउमहुरमंजुलाहिं, गिराहिं संलवमाणी २ पडिबोहेइ ।

भावार्थ—तत्पश्चात् त्रिशला देवी इन उदार-प्रधान चौदह महा स्वप्नों को देखकर जाग उठी । उस समय वे बडी ही हर्षित, संतुष्ट तथा प्रसन्नचित्त दीख पडती थी । मेघ की धारा से सिंचित कदम्ब कुसुम के समान उसके शरीर की रोमराजि विकसित और पुलकित हो गयी । वह उन स्वप्नों को क्रम-पूर्वक याद करने लगी । तब शय्या से वह उठी और पादपीठ से नीचे उतर कर शान्त एवं सुस्थिर चित्त से काया की चपलता, स्खलन, विलम्ब आदि से रहित राजहंसनी के समान गति से चलती हुई, जहां शय्यागृह और सिद्धार्थ राजा थे, वहा आई । और उसने सिद्धार्थ राजा को विशिष्ट गुणों से युक्त, प्रिय, द्वेष रहित, मनोज्ञ, उदार, मृदुल, कल्याणकारी, समृद्धिकारी, उपद्रवनाशिनी, धन लाभ कराने वाली, मंगलकारिणी, अलंकारादि से शोभायुक्त, कोमलकान्त, हृदयाकर्षक, परिमित एवं मधुर वाणी बोलकर जगाया ।

मूल—तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणा-मणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ २ त्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी २ एवं वयासी । ॥ ७२ ॥

भावार्थ—राजा को जगाने के बाद, उनकी आज्ञा से, त्रिशला रानी अनेक मणिरत्नों से जटित एवं

मनोहर सुवर्ण के सिंहासन पर वैठी, और मार्गजनित श्रम के नाश से शान्त और क्षोभ रहित हुईं। तव सुखपूर्वक आसन पर वैठी हुई वह सिद्धार्थ राजा को, इष्ट, कान्त एवं मनोज्ञ वाणी द्वारा यूं कहने लगी।

मूल—एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि वण्णओ जाव पडिवुद्धा तं जहा—गयवसह गाहा। तं एएसिं सामी ! उरालाणं चउदसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ।

भावार्थ—स्वामिन् ! आज पूर्व वर्णित मनोज्ञ शय्या पर अर्द्धनिद्रित अवस्था मे मैने हाथी से लगाकर निर्धूम अग्नि पर्यन्त, चौदह महास्वप्न देखे। तव मै जागृत हुई। प्राणनाथ ! इन चौदह प्रधान महास्वप्नों का कौनसा कल्याणकारी फल होगा ? यह मै आपके श्रीमुख से सुनना चाहती हूँ।

मूल—तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते जाव हियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हइ-२ त्ता ईहं अणुपविसइ २ त्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ २ त्ता तिसलं खत्तियाणिं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुर

सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे २ एवं वयासी ।

भावार्थ—सिद्धार्थ राजा, त्रिशला रानी से यह बात सुनकर और उसे हृदय में धारण कर मारे हर्ष के सतुष्ट एव प्रफुल्लित हो उठे । मेघ को धारा से सिंचित कदम्ब के सुगन्धित सुमनों की भाति उनकी रोमराजि पुलकित हो पडी । राजा उन स्वप्नो को मन मे धारण कर उनके यथार्थ अर्थ का निर्णय करने मे जुट-सा पडा । यूँ विचार मग्न हो, उसने अपनी स्वाभाविक बुद्धि और विज्ञान बुद्धि से, उन स्वप्नो का यथार्थ अर्थ जान लिया । तब वह त्रिशला रानो को विशिष्ट गुणयुक्त इष्ट मंगलकारिणी परिमित मधुर और अलकार युक्त वाणी से बोलकर यों कहने लगा ।

मूल—उरालाणं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा कल्लाण णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा, धन्ना, मंगला, सस्सिरीया, आरुग्गतुट्ठि दीहाउकल्लाणमंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुखलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए ! णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणंराइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं

कुलकेउं, अम्हं कुलदीवं कुलपव्वयं, कुलवडिंसयं, कुलतिलयं, कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं, कुलदिणयरं, कुलाधारं, कुलनंदिकरं, कुलजसकरं, कुलपायवं, कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणिपायं, अहीणसंपुण्णपंचिंदियसरीरं, लक्खणवंजणगुणोववेयं, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं, ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुरूवं, दारयं पयाहिसि ।

भावार्थ—देवानुप्रिये ! तूने जो प्रधान, कल्याणकारी, उपद्रवहारी, अर्थलाभकारी, आरोग्य, सतोष एवं दीर्घायु के प्रदाता स्वप्न देखे है, उनसे परम अर्थ, भोग पुत्र, सुख, समृद्धि तथा राज्य की प्राप्ति होगी । उनके फलस्वरूप हमारे कुल मे ध्वज, दीपक और पर्वत समान स्थिर, अजेय और आधारभूत तथा कुल का मुकुट, उसकी कीर्ति को दिशा-विदिशाओ मे व्याप्त करनेवाला, वृत्तिकारी, सूर्य के समान कुल का प्रकाशक, वश का आधारभूत, उसकी समृद्धि का करनेवाला, कल्पवृक्ष के समान, उसकी सर्वतोमुखी वृद्धि करने वाला, सुकुमार हाथ-पावो वाला, सर्वाङ्ग पूर्ण लक्षण, व्यजन गुण तथा मान, उन्मान व प्रमाणोपेत परिपूर्ण शरीरवाला, चन्द्रमा के समान सौम्यमुख वाला, सुन्दर प्रिय दर्शन, एव सर्व वल्लभ सुपुत्र पैदा होगा ।

मूल—से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते, जुव्वणगमणुप्पत्ते, सूरे,

वीरे, विइक्कंते, विच्छिन्नविउलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ ।

भावार्थ–देवानुप्रिये ! वह बालक बाल्यावस्था छोड बडा होने पर अपने समय का अपूर्व विज्ञानवेत्ता होगा । यौवनावस्था मे भी दान देने अथवा सहस्रो का निर्वाह करने मे बड़ा ही शूर होगा । वह रण-वीर और पर राज्य को जीतने मे परम पराक्रमी सिद्ध होगा । विशाल सेना और शस्त्रादि तथा अनेक राजाजनो का भी राजा वह होगा ।

मूल–तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिया ! जाव दुच्चंपि तच्चंपि अणुबूहइ । तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया करयलपरिग्गहियदसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ।

भावार्थ–देवानुप्रिये ! तुमने प्रधान एव परम कल्याणकारी स्वप्न देखे है । यूँ दो तीन बार कहकर, सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला रानी के देखे हुए स्वप्नो की हृदय से प्रशसा की ।

त्रिशला रानी राजा सिद्धार्थ के मुख से यह सुन और समझ, अत्यन्त हर्षित, सतुष्ट और प्रसन्न हुई । तब अपने दोनों हाथो को जोड अञ्जलि बाध राजा से वह बोली ।

मूल–एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिद्धमेयं सामी !

इच्छियमेयं सामी ! पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी ! सच्चेणं एसमट्ठे, से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ २ त्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भुणुण्णाया समाणी नाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं वयासी ।

भावार्थ—स्वामिन् ! जैसा आप कहते है, वह तथारूप है, यथार्थ है और संदेह रहित है । यही इच्छित है । आपके वचन मुझे ग्राह्य है । आपका कथन प्रामाणिक है । ऐसा कहकर उसने उन स्वप्नो को भलीभाति अगीकार किया फिर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा ले रत्न-जटित स्वर्ण-सिहासन से वह उठी । शान्त मन और तन, अस्खलित वाणी और राजहसी के समान अविलम्ब चाल से चलकर, अपने शयनागार को वह आती है और इस प्रकार विचारती है ।

मूल—मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला सुमिणा दिट्ठा, अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्संति त्ति कट्टु देवयगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं

सुमिणजागरियं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

भावार्थ—मेरे देखे हुए सर्वोत्कृष्ट, प्रधान एव मगलकारी, चौदह महास्वप्न, किसी अन्य अहितकारी स्वप्न से निष्फल न हो, ऐसा विचार कर, देव तथा गुरुजन सम्बन्धी, प्रशस्त शुभ एव धार्मिक सुन्दर कथाओ से स्वप्नों की रक्षा के लिए जागरण करती हुई, और उन स्वप्नो को पुन पुन याद करतो हुई, त्रिशला रानी ने रात्रि व्यतीत की ।

मूल—तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्जसविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदगसित्तं सुइअसंमज्जिओवलित्तं सुगंधवरपंचवन्नपुप्फोवयारकलियं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह, करित्ता य कारवित्ता य सीहासणं रयावेह, रयावित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

भावार्थ—प्रात.काल होने पर, सिद्धार्थ राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा कि—हे देवानुप्रिय, आज विशेष रूप से, बाहर के सभा-मण्डप को सुगन्धित जल से सिचन करो, उसे पवित्र बनाओ कूडा-कर्कट हटाकर, उसका सम्मार्जन करो और गोबर आदि से लीपकर उसे स्वच्छ बनाओ, सुगन्धित पाच

वर्ण के फूलो से उसे मुसज्जित करो, कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दरूक तुरूक्क पदार्थो का धूप दे, उसकी सुगन्ध से उसे महकाओ, और रमणीय वनाओ, अन्य सुगन्धित चूर्णो व नाना प्रकार की सुगन्धित गोलिओ से सुरभित करो, कराओ, तथा वहा सिहासन की रचना कराओ। इतना कर चुकने पर शीघ्र मुझे सूचना दो।

मूल—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हय हियया करयल जाव कट्टु एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति पडिक्खिमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्तसुइय जाव सिहासणं रयाविंति, रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

भावार्थ—राजाज्ञा को पा वे सभी कौटुम्बिक पुरुप, अत्यन्त हर्षित, सतुष्ट एव प्रफुल्ल हो दोनो हाथ जोड ननमस्तक हो राजा से कहने लगे, कि स्वामिन्! आपकी आज्ञा का हम लोग यथाविधि पालन करेगे। ऐसा

कह वे विनयपूर्वक राजा के वचनो को सुन वहा से बाहर निकलते हैं, और जहा सभा मण्डप था, वहा आते है। उसे सुगधित जल से सिंचित कर वे पवित्र करते है। सिहासन को ठीक जमा कर तथा अन्य कार्य पूरे करके वे सिद्धार्थ राजा के पास जाते है। तब वे नतमस्तक हो, सिद्धार्थ राजा से निवेदन करते है कि आपकी आज्ञानुसार हमने सभी कार्य कर दिये है।

मूल—तएणं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियंमि अहापंडुरे पभाए, रत्तासोगप्पगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागबंधुजीवगपारावयचलणनयणपरहुयसुरत्तलोयणजासुयण कुसुमरासिहिंगुलयनियराइरेगरेहंतसरिसे कमलायरसंडबोहए उट्ठियंमि सूरे सहस्सरस्सिंमि दिणयरे तेयसा जलंते तस्स य करपहरापरद्धंमि अंधियारे बालायवकुंकुमेणं खचियव्व जीवलोए, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ।

भावार्थ—रात्रि के व्यतीत और प्रभात के प्रकाशित होने पर, जब कमल और कृष्णमृग के नेत्र विकसित होने लगे, तब रक्त अशोक की कान्ति के समान लाल, किशुक के फूल, तोते की चोच, गुञ्जा का अर्द्ध भाग, बन्धुजीवक और जासु के सुमन, कबूतर के पाव और नेत्र, कोयल के क्रुद्ध नयन, हिंगलू के पुज से भी अधिक आरक्त, सरोवरस्थ-कमल-कुल विकाशक सहस्र किरणधारी, देदीप्यमान, स्वमरीचि-माला से तम-तोम नाशक,

और अपनी नवीन आरक्त आभा रूपी कुंकुम से सारे संसार को व्याप्त करने वाले सूर्य के उदित होने पर सिद्धार्थ राजा अपनी शय्या से उठे।

मूल—सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरूहइ २ त्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अट्टणसालं अणुपविसइ २ त्ता अणेगवायामजोग्गवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधवरतिल्लमाइएहिं, पीणणिज्जेहिं,दीवणिज्जेहिं,मयणिज्जेहिं,विंहणिज्जेहिं, दप्पणिज्जेहिं, सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं, अब्भंगिए समाणे, तिल्लचम्मंसि निउणेहि पडिपुण्णपाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं, अब्भंगणपरिमद्दणुव्वलणकरणगुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं, पट्ठेहिं, कुसलेहिं मेहावीहिं जियपरिस्समेहिं पुरिसेहिं अट्ठिसुहाए, मंससुहाए, तयासुहाए, रोमसुहाए चउव्विहाए सुहपरिक्कमणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे अट्टणसलाओ पडिनिक्खमइ।

भावार्थ—शय्या से उठ और पादपीठ से नीचे उतर कर, सिद्धार्थ राजा जहा व्यायामशाला थी, वहा गये। उस शाला मे प्रविष्ट होकर नाना प्रकार की व्यायाम की क्रियाओ, जैसे दण्ड-बैठक, मुगदर का फिराव,

ऊँची-नाची कूद, भुजाओ की मोड, कुस्ती इत्यादि अनेको प्रकार के व्यायामो से थक जाने पर वे अपने शरीर का मर्दन कराने लगे । सैंकडो औपधियो द्वारा निर्मित व सेंकडो मुहरो की लागत के शतपाक, एव हजारो औषधियो के रसो से पकाये हुए व हजारो मुहरो के व्यय से तैयार किये हुए सहस्रपाक नामक तेलो के द्वारा मर्दन उन्होने करवाया । वह शतपाक एव सहस्रपाकादि तैलो का मर्दन, सातो धातुओ को समतौल करने वाला, जठराग्नि एव काम प्रदीपक, मास-पेशियो को प्रगाढ बनाने वाला, बलकारी और शरीर के सम्पूर्ण अवयवो व इन्द्रियो को आनन्द देनेवाला था । मर्दन करने वाले पुरुष भी अपनी कला मे बडे ही निपुण थे । वे स्वय सपूर्ण अवयवो वाले थे । उनके हाथ-पाव बडे ही कोमल थे । तंल लगाने, मर्दन करने और मर्दित तैल को पुन निकालने के काम में वे बडे ही अभ्यस्त थे । अवसर को जानकर शीघ्रता से कार्य करने वाले अपने हम-पेशा लोगो मे विशेषज्ञ, विवेकवान्, बुद्धिमान् तथा बहुत परिश्रम करने पर भी वे थकते नही थे । ऐसे तैल-मर्दको ने चारो प्रकार का सुखकारक अर्थात् अस्थि, त्वचा, माप और रोम को सुख देने वाला मर्दन राजा के किया । यूँ तैल-मर्दन, आदि से थकावट-रहित होकर, राजा सिद्धार्थ व्यायामशाला से बाहर निकले ।

मूल—अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ२त्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे, विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे

न्हाणमंडवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि न्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे पुप्फोदएहिं य गंधोदएहिं य उण्होदएहिं य सुहोदएहिं सुद्धोदएहिं य कल्लाण करणपवरमज्जणविहीए तत्थ कोउसएहिं वहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे, अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंबुडे, सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे, कप्पियहारद्धहारतिसरयपालंवपलंवमाणकडिसुत्तसुकयसोहे, पिणद्धगेविज्जे, अंगुलिज्जगललियकयाभरणे, वरकडगतुडियथंभियभूए, अहियरूवसस्सिरीए, कुंडलउज्जोइआणणे, मउडदित्तसिरए, हारुत्थयसुकयरइयवच्छे, मुद्दियापिंगलंगुलीए, पालंवपलंवमाणसुकयपडउत्तरिज्जे नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोचियमिसिमिसितविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठआविद्धवीरवलए किंवहुणा ? कप्परुक्खए विव अलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणेहिं मंगलजयजयसद्दकयालोए अणेगगणनायगदंडनायगराईसरतलवरमाडंवियकोडुंवि-

यमंतिमहामंतिगणगदोवारियअमच्चचेड पीढमद्द नगरनिगमसेट्ठिसेणावइसत्थवाहदूयसंधिबाल सद्धिसंपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए इव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससिव्व पियदंसणे नरवई नरिंदे नरवसहे नरसीहे अब्भहियरायतेयलच्छीए दिप्पमाणे मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ।

भावार्थ—व्यायामशाला से बाहर निकल, वे स्नानागार की ओर आये । स्नानागार मे जाकर मोतियो की जालियो से सुन्दर, विविध प्रकार के मणि-रत्नो से जटित आगन वाले रमणीय स्नान-मण्डप में नाना प्रकार की मणियो व रत्नों से जटित स्नान-पीठ पर, सुखपूर्वक बैठ फूलो के रस से युक्त निर्मल, चन्दनादि के रस सुगन्धित एव उष्ण कई तीर्थ स्थानों के शुभ, शुद्ध एवं स्वाभाविक शीतल जल से कल्याणकारी स्नान की श्रेष्ठ विधि द्वारा निपुण पुरुषो से उन्हें स्नान करवाया गया । तब भाति-भाति के अनेको कौतुको से युक्त एव कल्याणकारी स्नान कर लेने के बाद रोएँदार मुलायम केशर चन्दन वगैरह सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित, लाल वस्त्र से शरीर को उन्होने पोंछा । स्वच्छ, बहुमूल्य व प्रधान वस्त्र धारण किये । सरस एव सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का शरीर पर विलेपन किया । पवित्र एवं सुवासित पुष्पमाला धारण कर, कुंकुम केशर आदि विलेपनो से शरीर को विभूषित किया । मणि, सुवर्ण, और रत्नों द्वारा निर्मित आभूषण उन्होने पहने । हृदय पर अठारह, नौ व तीन लड़ियों के

॥ ८४ ॥

तीन हार, लम्वा लटकता हुआ मोतियों का झुँबनक और कमर मे स्वर्ण का कदोरा, गले मे हीरे, माणिक आदि के कठे और भाँति-भाँति के आभूषण, अगुलियो में अगूठियाँ, रत्न जटित श्रेष्ठ स्वर्ण के कडे, पहुँची और भुजवन्ध आदि अलकारो को उन्होने धारण किया। वालो को सवार कर सुगन्धित सुमनो से उन्हे सजाया। वे स्वभाव से ही परम सुन्दर थे। फिर कुडलो की काति से उनका मुख और भी अधिक चमक उठा था। मस्तक पर उनके मुकुट शोभित था। उनका वक्षस्थल मुक्तादि के हारो से ढँका था। अतएव देखनेवालो को बडा ही मनोरम जान पडता था। उनकी अगुलियाँ मुद्रिकाओ से बड़ी सुन्दर मालूम होती थी। लम्बे लटकते हुए बहुमूल्य सुन्दर वस्त्र का उन्होने उत्तरासन किया था। नाना प्रकार के रत्न, मणि और स्वर्ण से जटित, स्वच्छ, वहुमूल्य, कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित, देदीप्यमान, सावधानतापूर्वक भली-भाँति जोडा हुआ, सभी आभूपणो से विशिष्ट, एव अत्यन्त मनोरम 'वीरवलय' आभूषण उनकी बाहु मे था। जिसको धारण कर लेने पर वे 'अजय' बन गये थे। अधिक क्या ? राजा सिद्धार्थ, उस समय, जैसे कल्पवृक्ष सुन्दर पत्तो व पुष्पो से सज्जित होता है, वैसे ही वे देदीप्यमान आभूपणो एवं बहुमूल्य वस्त्रों से शोभित थे। मस्तक पर उनके कोरंट वृक्ष के श्वेतपुष्पो की सुन्दर माला शोभित थी। अति उज्ज्वल श्वेत चँवर उन पर ढुल रहे थे और चारो ओर लोग, राजा की जयजयकार कर रहे थे। यूँ अलकृत होकर अनेको गण-नायको, तन्त्रपालो, माण्डलिक राजाओ, युवराजो, तलवरो अर्थात् राजाओं ने प्रसन्न होकर जिन्हे चाद दिए हो ऐसे दरबारियों, मण्डल के स्वामियो, कौटुम्बिको,

मत्रियो महामंत्रियो, कोषाध्यक्षो, ज्योतिषियों, द्वारपालो, छडीदारों, अमात्यों, दासो, चाकरो, पीठमर्दको, मित्र-गणो, प्रतिष्ठित नगर निवासियो, व्यापारियो, सेठो, सेनापतियो, सार्थवाहो, दूतो, संधिपालो एवं अङ्गरक्षको के साथ वे स्नानागार से निकलते हुए ऐसे शोभते थे, मानो विशाल धवल मेघ से ग्रह-नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा निकला हो । वे लोकप्रिय मनुष्यो मे इन्द्र व सिह के समान थे । यूँ राजलक्ष्मी से युक्त होकर वे स्नानागार से बाहर निकले ।

मूल—मज्जणघराओ पडिनिक्खमइत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ २ त्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अट्ठभद्दासणाइं सेयवत्थपच्चुत्थयाइं, सिद्धत्थयकयमंगलोवयाराइं रयावेइ २ त्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणामणिरयणमंडियं अहियपिच्छणिज्जं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसयचित्तताणं ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ २ त्ता नाणामणिरयण भत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगुत्थयं सेयवत्थपच्चुत्थयं सुमउयं अंगसुहफरिसगं विसिट्ठं तिसलाए खत्तियाणीए

भद्दासणं रयावेइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी ।

भावार्थ—पूर्वाभिमुख सिहासन पर बैठ, सिद्धार्थ राजा ने अपने उत्तर पूर्व मे, श्वेत-वस्त्रों से आच्छादित, सफेद सरसो से पूजित और मागलिक आठ भद्रासनों को रखवाया । तव अपने से न अधिक दूर ओर न अधिक पास, अनेक मणिरत्नो से जटित, अति ही दर्शनीय, बहुमूल्य, नगर मे बने हुए, अति स्निग्ध, महान सूत की विशिष्ट रचना द्वारा रचित, मृग वृक, वृपभ, अश्व मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर (देव), मृग विशेष, अप्टापद, चमरीगाय, हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्रों से चित्रित किया हुआ एक पर्दा सभा मण्डप के आभ्यन्तर भाग मे वँधवाया और उसके मध्य मे विविध मणि-रत्नो से जटित, कोमल गादी और तकिये से सुसज्जित, श्वेत वस्त्र से आच्छादित, कोमल, अंग को सुखकारी स्पर्शवाला और शोभनीय एक सिहासन त्रिशला रानी के लिए रखवाया और कौटुम्बिक पुरुपो को बुलवाकर इस प्रकार कहा ।

मूल—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंग महानिमित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले, सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया करयल जाव पडिसुणंति पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता कुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव

सुविणलक्खणपाढगाणं गेहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुविणलक्खणपाढए सद्दाविंति ।

भावार्थ–हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही स्वप्न, उत्पात, अंतरिक्ष, भौम, अग, स्वर, लक्षण और व्यंजन, इन अष्टाग महानिमित्तो के पारगामी, विविध शास्त्र निष्णात, स्वप्न लक्षण पाठकों को बुलाओ । यह सुनकर वे कौटुम्बिक पुरुष बडे ही हर्षित हुए । उन्होने सन्तोष पाया व उनका हृदय आनन्द से भर गया । तब वे हाथ जोडकर राजाज्ञाओ को विनयपूर्वक सुन सिद्धार्थ राजा के पास से निकलकर, क्षत्रिय कु ड नगर के मध्य में होकर स्वप्न-लक्षण पाठकों के घर पर आये और उनसे कहा कि आपको सिद्धार्थ महाराजा बुला रहे है ।

मूल–तएणं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, सिद्धत्थयहरियालिया कयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सिद्धत्थस्स रण्णो भवणवरवडिंसगपडिदुवारे तेणेव

उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भवणवरवडिंसगपडिदुवारे एगओ मिलंति मिलित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं जाव कट्टु सिद्धत्थं खत्तियं जएणं विजएणं वद्धावेंति ।

भावार्थ—तदनन्तर, वे स्वप्न-लक्षण-पाठक, सिद्धार्थ राजा के कौटुम्बिक पुरुषो के द्वारा वुलाये जाने, और ऐसा कहे जाने पर बड़े ही हर्षित एवं संतुष्ट हुए। पश्चात् उन्होने स्नान किया। तिलक आदि कौतुक किये। सरसो, दही, अक्षत, दूर्वा आदि मगल किये। तथा, स्वच्छ और राज-सभा मे प्रवेश करने योग्य मंगल-सूचक उत्तम वस्त्र उन्होने धारण किये। वे स्वप्न-लक्षण पाठक, अल्प एव बहुमूल्य आभूषणो से अलंकृत हो, मगल के हेतु सरसो और दूर्वा को मस्तक पर धारण कर, और अपने-अपने घरो से निकल, क्षत्रियकुंड ग्राम नगर के मध्य मे होकर सिद्धार्थ राजा के सर्वश्रेष्ठ राजभवन के मुख्य द्वार पर आए, और वहां वे सभी परस्पर मिल एव एक को नेता बना, सिद्धार्थ राजा के सभा-मण्डप मे, जहा राजा सिद्धार्थ विराजमान थे, आए और हाथ जोड यूँ कहने लगे—'राजन् !' स्वदेश और विदेश मे सर्वत्र आपकी विजय हो, यूँ जय-विजय से राजा को वधाया और उन्होने आशीर्वाद दिया।

मूल—तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थेणं रण्णा वंदियपूइयसक्कारियसम्मा-

णिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति। तएणं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलं खत्तियाणिं जावणियंतरियं ठावेइ, ठावित्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी।

भावार्थ—तत्पश्चात् सिद्धार्थ राजा ने उन स्वप्न-लक्षण-पाठको को, उनकी गुण-स्तुति करके नमस्कार किया। साथ ही पुष्पादिक से स्वागत, फल, वस्त्रादि की भेट से सत्कार और अभ्युत्थानादि से उनके प्रति सम्मान प्रगट किया। स्वागत आदि के पश्चात् वे स्वप्न-पाठक, पहले ही से रखे हुए भद्रासनो पर बेठे। सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला रानो को पर्दे के अन्दर बैठाया, और पुष्प एव फलो को हाथो मे ले, अत्यन्त विनय से वे उन स्वप्न-पाठकों से यूँ कहने लगे।

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमे एयारूवे उराले चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं जहा—गय वसह गाहा। तं एएसिं चउदसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया! उराला के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

भावार्थ–हे देवानुप्रियो ! आज त्रिशला रानी ने, पूर्वोक्त गुणयुक्त कोमल शय्या पर, अर्द्ध निद्रितावस्था मे गज व वृषभ-रूप प्रधान चौदह स्वप्न देखे है। इन स्वप्नो को देखकर, वह जाग पडी। कहिये, इन महा-स्वप्नो का कौन-सा कल्याणकारी फल होगा।

मूल–तएणं ते सुमिणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया ते सुमिणे ओगिण्हिंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेइ २ त्ता तेसिं सुमिणाणं लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा २ सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी।

भावार्थ–तब वे स्वप्न-पाठक, सिद्धार्थ राजा के ऐसे वचनो को ध्यान-पूर्वक सुनकर बड़े ही हर्षित और संतोषित हुए। उन्होने स्वप्नो को ध्यान-पूर्वक सुनकर उनका अर्थ निश्चित किया और तब गम्भीर विचार-विनिमय द्वारा स्वप्नो के अर्थ को स्वय निज की बुद्धि से व दूसरो के द्वारा जानकर, और सशय आ पडने पर शका समाधान करने की विधि से परिचित होकर उनके अर्थ का निश्चय और अवधारण करके, एकमत हो, सिद्धार्थ राजा के सामने, स्वप्न शास्त्रो का उच्चारण करते हुए वे यूँ बोले—

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुमिणसत्थे बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा, बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा । तत्थणं देवाणुप्पिया ! अरहंत मायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि वा चक्कहरंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति तं जहा—गय वसह गाहा । वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउदसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे सत्त महा सुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति । मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउदसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ताणं पडिबुज्झंति ।

भावार्थ—देवानुप्रिये ! हमारे विचाब से, स्वप्न-शास्त्रों मे कुल बहत्तर प्रकार के स्वप्न, जिनमे से बयालीस सामान्य फल वाले और तीस स्वप्न महाफल वाले बतलाये गये है । राजन् ! अरिहत-तीर्थङ्कर व चक्रवर्ती की माताएँ, जब अरिहत और चक्रवर्ती जीव उनके गर्भ मे आता है, तब इन तीस प्रकार के महास्वप्नो मे से, हाथी से लेकर

निर्धूम अग्नि तक के चौदह महास्वप्नो को देख जाग उठती है। और वासुदेव, बलराम तथा माण्डलिक की माताएँ क्रमशः वासुदेव आदि के गर्भ मे आने पर, इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई सात, चार और कोई एक महास्वप्न को देखकर जाग पडती है।

मूल—इमे य णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए चउदस महासुमिणा दिट्ठा। तं उराला णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा जाव मंगलकारगा णं देवाणुप्पिया तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया ! सुखलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया तिसला खत्तियाणी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं, कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडिंसयं, कुलतिलयं, कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं, कुलदिणयरं, कुलाधारं, कुलनंदिकरं, कुलजसकरं, कुलपायवं, कुलतंतु संताण विवद्धणकरं, सुकुमालपाणिपायं, अहीणपडिपुण्णपंचिदियसरीरं, लक्खणवंजणगुणोववेयं, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससि

सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि ।

भावार्थ—देवानुप्रिय ! त्रिशला रानी ने जो चौदह महास्वप्न देखे है, वे प्रशस्त और यावत् कल्याणकारी है । इससे नरेन्द्र ! आपको अर्थ, पुत्र, भोग, सुख और राज्य की सप्राप्ति होगी । त्रिशला महारानी, नौ मासो के ऊपर साढे सात रात्रियो के बीत जाने पर, एक कुल-ध्वज, कुल-दीप, कुल-पर्वत, कुल-मुकुट, कुल-तिलक, कुल-कीर्तिकारी, कुल-पोषक, कुलाधार, कुल समृद्ध कर्ता, कुल-कल्पवृक्ष, कुल-परम्परा वर्द्धक, बड़े ही कोमल कर-चरण वाले, न्यूनतारहित, समग्र पञ्चेन्द्रिय युक्त शरीर वाले, लक्षण, व्यञ्जन और गुणों से विभूषित, मान, उन्मान और प्रमाणोपेत, समग्र रूप, शीलवान् और सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य, प्रियदर्शी, महान् रूप सम्पन्न और मनोहर पुत्र रत्न को जन्म देने वाली होगी ।

मूल—से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते, जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विइक्कंते विच्छिन्नविपुलबलवाहणे चाउरंत चक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ । जिणे वा तिलोगनायगे धम्मवरचाउरंत चक्कवट्टी ।

भावार्थ—वह बालक बाल भाव छोडकर सयाना होने पर विज्ञान का ज्ञाता होगा, यौवनावस्था में महादानी, संग्राम मे वीर, परराज्य पर आक्रमण करने मे समर्थ, विस्तीर्ण और विपुल सेना, आयुध और वाहन

वाला, राजा महाराजाओ का स्वामो, दिग्विजयी चक्रवर्ती राजा होगा तथा तीन लोक के नायक और धर्म के विपय मे श्रेष्ठ और चार गति का नाश करनेवाला चक्रवर्ती जिनेश्वर होगा।

प्रसग वश उन चौदह महास्वप्नो का पृथक्-पृथक् फल भी यहाँ दिये देते है--(१) प्रथम स्वप्न मे, चार दातवाला हाथी देखने से, वह पुत्र, दान, शील, तप और भाव रूप चार प्रकार के धर्म का उपदेशक होगा। (२) वृषभ के देखने से, भरत क्षेत्र मे सम्यक्त्व बीज का वह वपन करेगा। (३) सिह दर्शन से आठ कर्म रूपी हाथियो का विदारण करेगा। (४) लक्ष्मी के देखने से, दान देकर पृथ्वी को हर्षित करनेवाला, अथवा तीर्थङ्कर लक्ष्मी का भोगी होगा। (५) पुष्प मालाओ के दर्शन से, समस्त प्राणी उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करेंगे। (६) चन्द्र के देखने से, वह सर्व भव्यजनों के हृदय और नेत्र को आह्लादित करनेवाला बनेगा। (७) सूर्य को देखने से, उसके पीछे, भामण्डल दीप्तियुक्त होगा। (८) ध्वज से, उनकी धर्म-ध्वजा खूब ही लहलहा उठेगी। (९) पूर्ण कलश से, ज्ञान, धर्मादि रूप महल के शिखर पर आसीन होगा। (१०) पद्म सरोवर से, देव रचित अचित स्वर्ण कमलो पर चलने वाला होगा। (११) समुद्र से केवल ज्ञान रूपी रत्न का वह आधारभूत होगा। (१२) विमान से, वैमानिक देवो द्वारा वह पूजनीय बनेगा। (१३) रत्नो की राशि से, रत्न जडित मुकुटो वाले इन्द्रो मे, समवशरण मे, वह शोभित होने वाला होगा। (१४) महास्वप्न का निर्धूम अग्नि भव्यजनो की आत्मशुद्धि करेगी। यूँ इन चौदहमहास्वप्नो का सामुदायिकफलचौदहराजलोकोके अग्रभाग मे स्थित होगा।

मूल—तं उराला णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा जाव आरुग्ग तुट्ठि दीहाउकल्लाणमंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणी सुमिणा दिट्ठा ।

भावार्थ—देवानुप्रिय ! महारानी त्रिशला ने जो स्वप्न देखे है वे वडे ही प्रशस्त, आरोग्यवर्द्धक, सन्तोषदायक, चिरन्तन बनाने वाले, कल्याणकारी तथा मागलिक है ।

मूल—तत्थेणं सिद्धत्थे राया तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए करयल जाव ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—एवमेव देवाणुप्पिया ! तहमेयं दे० अवितहमेयं दे० इच्छियमेयं दे० पडिच्छियमेयं दे० इच्छियपडिच्छियमेयं दे० सच्चेणं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ २ त्ता ते सुविणलक्खणपाढए विउलेणं असणेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइ २ त्ता पडिविसज्जेइ ।

भावार्थ—तत्पश्चात् राजा सिद्धार्थ, उन स्वप्न-लक्षण पाठको के द्वारा यह अर्थ सुन और समझ कर बडे ही हर्षित और संतुष्ट हुए । करबद्ध हो स्वप्न-पाठको से वे यूँ बोले, देवानुप्रियो ! जो आपने कहा वह यथार्थ

और वाछनीय है आपके वचनो को मैंने धारण किया। उनका अर्थ सच्चा और जैसा आपने कहा, ठीक वह वैसा ही है। यूँ कहकर, राजा सिद्धार्थ ने उन स्वप्नों को ध्यान में रक्खा। फिर उन स्वप्न-पाठको का विपुल भोजन की सामग्रो, पुष्प, वस्त्र. गध, माला और आभूषणो से समुचित सम्मान कर और जीवन पर्यन्त उनके निर्वाह के योग्य प्रीतिदान देकर उन्हें विदा किया।

मूल—तएणं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणियंतरिया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिसलं खत्तियाणीं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! सुविणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा जाव एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति। इमे अणं तुमे देवाणुप्पिए! चउद्दसमहासुमिणा दिट्ठा, तं उराला णं तुमे जाव जिणे वा तेलुक्कनायगे धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टी।

भावार्थ—तब वे सिद्धार्थ राजा, सिहासन से उठकर, जहा यवनिका के अन्दर त्रिशला रानी थी, वहा जाकर उससे इस प्रकार वोले, "देवानुप्रिये! स्वप्न शास्त्र मे वयालीस स्वप्न मध्यम फलवाले और तीस महाफल वाले वतलाये है। यावत् माडलिक राजा की माता एक महास्वप्न देखकर जागृत हो जाती है। प्रिये! तुमने प्रधान और प्रशस्त चौदह स्वप्न देखे है। इसलिए त्रिलोक का नायक, धर्म मे श्रेष्ठ और चार गति को नष्ट करने-

वाला चक्रवर्ती, जिनेश्वर पुत्र तुम्हारी कोख से उत्पन्न होगा ।

मूल—तएणं सा तिसला एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया करयल जाव ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ २त्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भुणुण्णाया समाणी नाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता अतुरियमचवलमसंभंताए, अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सयं भवणं अणुप्पविट्ठा ।

भावार्थ—तदनन्तर वह त्रिशला रानी राजा की इस बात को सुन और समझकर अत्यन्त हर्षित तथा सतुष्ट हुई । वह हाथ जोड और अजली बाधकर स्वप्नो का चिन्तन करने लगी और सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर, नाना प्रकार के मणि-रत्नो से मनोहर भद्रासन से उतर धीमे-धीमे स्थिरता एवं दृढता-पूर्वक राजहसनी के समान, अविलम्ब एव निरन्तर चाल से चलती हुई, जहाँ अपना भवन था, वहाँ जाकर भवन में प्रविष्ट होगई ।

मूल—जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तंसि रायकुलंसि साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरा पोराणाइं महानिहाणाइं भवंति तं जहा—पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं, पहीणगोत्तागाराइं, उच्छि-

न्नसामियाइं, उच्छिन्नसेउयाइं उच्छिन्नगोत्तागाराइं, गामागरनगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहप-ट्टणा संवाह संनिवेसेसु, सिंघाडएसु वा, तिएसु वा, चउक्केसु वा चच्चरेसु, वा, चउम्मुहेसु वा, महापहेसु वा, गामट्ठाणेसु वा, नगरट्ठाणेसु वा, गामनिद्धमणेसु वा, नगरनिद्धमणेसु वा, आवणेसु वा, देवकुलेसु वा, सभासु वा, पवासु वा, आरामेसु वा, उज्जाणेसु वा, वणेसु वा, वणसंडेसु वा, सुसाणसुन्नागार-गिरिकंदरसंति से लोवट्ठाणभवणगिहेसु वा, संनिखित्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थ रायभवणंसि साहरंति ।

भावार्थ—श्रमण भगवान् महावीर, जिस दिन से, राजकुल में, त्रिशला देवी की कुक्षि में पधारे, उसी दिन से, इन्द्र की आज्ञा से वैश्रमण-धनकुबेर के आज्ञानुवर्ती तिर्यक् लोक के निवासी, जृम्भक देवों ने, धन के निधान, जिनका वर्णन आगे दिया गया है, लाकर सिद्धार्थ राजा के घर में स्थापित कर दिये । वे धन के निधान यूँ थे—जमीन मे गडे होने से पुराने, जिनके स्वामी मर मिटे है, जिनके संग्राहक भी अब नही रह गये है, जिनके हकदार, गोत्री और घरवार सभी नष्ट हो चुके है, जिनके अब कोई नाम लेने वाले ही नही रह गये है, जिनके सग्राहक सर्वथा नष्ट हो गये, जिनके हकदार रिश्तेदार, सर्वथा न रहे हों । इस एकार के धन के खजाने, गाँव, आकर (लोहादि की खान), नगर, खेड (धूलि का परकोटा वाला स्थान), कर्वट (बुरा नगर), मडव (जिसके

चारो ओर आधे-आधे योजन पर ग्राम होते है), द्रोणमुख (जल और स्थल दोनो प्रकार के मार्गवाले), पत्तन (जहाँ जल मार्ग और स्थलमार्ग में से कोई भी एक मार्ग हो), आश्रम (तीर्थ-स्थान या तापसों के निवास-स्थान), सवाह (समभूमि, जहां कृषक, धान्य की रक्षा के लिए धान्य रखते है), सन्निवेश (जहां सेनाएँ या संघ और पथिक डेरा डाले), इत्यादि स्थानों मे, अथवा तीन या चार या अनेको मार्ग जहाँ मिले, वहां देवकुलों, राजमार्गों, ग्राम अथवा नगर के उच्च स्थानों, गाव अथवा नगर के जल-निकास के मार्गो, दूकानो, यक्षायतनो, मनुष्यो के बैठने के सभादि स्थानो, पानी की प्याऊओं, बगीचों, उद्यानों, वनों, वनखण्डों, स्मशानो, टूटे-फूटे शून्य मकानो, पर्वत की गुफाओं, शांतिगृहों, पर्वत को खोदकर बनाये हुए घरो, सभा मण्डपों तथा भवन-गृहों मे, गुप्त रूप से रक्खे हुए थे। उनको उन जृम्भक देवो ने वहाँ से ला-लाकर, सिद्धार्थ राजा के भण्डारो में रख दिया।

मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था, सुवण्णेणं वड्ढित्था, धणेणं, धन्नेणं, रज्जेणं, रट्ठेणं, बलेणं, वाहणेणं, कोसेणं, कुट्ठागारेणं पुरेणं, अंतेउरेणं, जणवएणं, जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल धणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावइज्जेणं, पीइसक्कार-

समुदएणं अईव अईव अभिवड्ढित्था तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिउणं अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए, मणोगए, संकप्पे समुप्पज्जित्था ।

भावार्थ–जिस रात्रि में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का ज्ञात कुल में, सिद्धार्थ राजा के यहां, सक्रमण हुआ, उसी रात्रि से हिरण्य (चादी अथवा बिना घड़ा हुआ सोना), सुवर्ण (घडा हुआ सोना), धन (सोनैये रुपये आदि गिनने की वस्तु, गुड, शक्कर आदि तोलने की वस्तु, वस्त्र आदि नापने की वस्तु, और रत्न आदि परीक्षा करने की वस्तु इस प्रकार यह चार प्रकार का धन माना गया), धान्य (चौबीस प्रकार का यव, गेहूँ, साली इत्यादि), राज्य, राष्ट्र (देश), वल (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना), वाहन (सवारी), कोष (भडार), कोष्ठागार (धान्य भरने के कोठे), अत.पुर (रनवास), और जनपद तथा यशोवाद कीर्ति) से, वह ज्ञातकुल निरन्तर वढने लगा तथा अत्यन्त विस्तीर्ण धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मुक्ता, दक्षिणावर्तादिक शख, राजपट्टादिक, अथवा विपापहारिणी शिला. प्रवाल पद्मराग, आदि उत्तमोत्तम सारभूत (इन्द्रजालवत असत्य नहीं किन्तु वास्तविक पदार्थो की अभिवृद्धि, एव प्रीति और सत्कार की बाढ से वे सिद्धार्थ राजा निरन्तर रूप से वढने लगे । यह वात देखकर श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के माता-पिता को इस प्रकार का प्रार्थित, चिन्तित और मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ ।

मूल—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवण्णेणं वड्ढामो, धणेणं जाव संतसारसावइज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणु त्ति ।

भावार्थ—जिस दिन से हमारा यह पुत्र कुक्षि मे, गर्भ रूप से आया है, उसी दिन से, हम चादी, सोना और धन-धान्य से लगाकर यावत् उत्तमोत्तम सारभूत पदार्थों तक तथा प्रीति और सत्कार से, निरन्तर विपुल वृद्धि पा रहे है । इसलिये जब यह पुत्र उत्पन्न होगा तब इस पुत्र का, इसके गुणों के कारण "वर्धमान" ऐसा गुणनिष्पन्न नाम रक्खेगे, जिससे 'यथानाम तथा गुण' का प्रदर्शन ससार अपनी आंखो से देख सकेगा ।

मूल—तएणं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले, निप्फंदे निरेयणे, अल्लीणपल्लीणगुत्ते यावि होत्था ।

भावार्थ—प्राय गर्भवती स्त्रियो को गर्भ के हलन-चलन से उदर मे पीड़ा हुआ करती है इसलिए माता की अनुकम्पा या भक्ति के लिए, वे मेरे हलन-चलन से माता को पोडा न हो, इस विचार से, श्रमण भगवान्

श्री महावीर स्वामी, गर्भ मे, निश्चल, स्पन्दन व कम्पन रहित और अगो का संगोपन करने से लीन, तल्लीन और गुप्त हो गये । अर्थात् उन्होने अगोपांग का संचालन वन्द कर दिया । मातृ-भक्ति और मातृ-प्रेम का कैसा उज्ज्वल आदर्श प्रभु ने अपने जीवन से वताया, यह ध्यान योग्य है ।

मूल–तएणं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था । हडे मे से गब्भे, मडे मे से गब्भे, चुए मे से गब्भे, गलिए मे से गब्भे, एस मे गब्भे पुव्विं एयइ, इयाणिं नो एयइ त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा चिंतासोगसागरं संपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया, भूमीगयादिट्ठिया झियायइ, तं पि य सिद्धत्थरायवरभवणं उवरयमुइंगतंतीलतालनाडइज्जजणमणुज्जं दीण विमणं विहरइ ।

भावार्थ–श्रमण भगवान् महावोर स्वामी के इस प्रकार अंग-सचालन के वन्द कर देने से, उस त्रिशला रानी को, इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, कि कदाचित् मेरे गर्भ को किसी दुष्ट देव ने हरण कर लिया, अथवा वह मर गया, या अपने स्थान से वह भ्रष्ट हो गया, अथवा गल गया है । यह मेरा गर्भ पहले तो अग-सचालन करता था, परन्तु अव उसका हलन-चलन बिलकुल बन्द है । यूँ सोचकर बडी ही चिन्तित हो उठी । वह गर्भ-हरण के विचार से उत्पन्न शोक रूपी समुद्र मे डूव गई। वह हाथ की हथेलो पर अपने मुख को रखकर, आर्त्त-

ध्यान करती हुई, किंकर्तव्य-विमूढ सी बन पृथ्वी की ओर देखती हुई सोचने लगी कि निश्चय ही मै अभागिन हूँ। जैसे किसी दुर्भागी, दरिद्री के हाथ चिन्तामणि रत्न नही रह सकता, वैसे ही मुझ अभागिनी के घर मे भी पुत्र रूपी निधान नही रह सका, इत्यादि। त्रिशला रानी की ऐसो अवस्था से सिद्धार्थ राजा का सुन्दर राज्य भवन मृदग, वीणा, ताल और नाटकीय मनुष्यो को सुन्दरता से हीन होकर, चारो ओर से उदासीनता को छितराने वाला बन गया।

मूल—तएणं से समणं भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अब्भत्थिय पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पन्नं वियाणित्ता एगदेसेण एयइ तए णं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया एवं वयासी नो खलु मे गब्भे हडे जाव नो गलिए, मे गब्भे पुव्विं नो एयइ, इयाणिं एयइ त्ति कट्टु हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया एवं वा विहरइ।

भावार्थ—इस वृत्तान्त को गर्भस्थित श्रमण भगवान् महावीर ने अपने अवधिज्ञान द्वारा जान लिया। और विचारा कि, मोह की गति ऐसी विचित्र है। मैने अपनी माता के आराम के लिए अग-संचालन बन्द किया था, परन्तु वह गुण पुष्ट धातु की भाति, दोष की पुष्टी करनेवाला विपरीत ही सिद्ध हुआ। ऐसा करने से मेरी माता का दुख उलटा बढ गया। इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर अपनी माता के ऐसे इच्छित,

प्रार्थित और मनोगत सकल्प को उत्पन्न हुआ जानकर, एक देश से अंग-सचालन करने लगे। यह जानकर त्रिशला रानी अत्यन्त हर्पित एव सतुष्ट हुई। उसके नेत्र और मुख रूपी कमल पुन प्रफुल्लित हो उठे। उसका हृदय आनन्द से विभोर हो उठा। वह हर्पित होकर कहने लगी कि मेरे गर्भ का हरण नही हुआ, मेरा गर्भ नही मरा, स्थान च्युत भी वह नहो हुआ और न गला ही, यह मेरा गर्भ पहले नही हिलता था, अब हिलता है। ऐसा कहकर वह बडी हर्पित हो उठो। और विलास करने लगी। त्रिशला रानी को इस प्रकार प्रमुदित देख कर सारा राजकुल आनन्दमय हो गया। धवल मंगल होने लगे। वाजित्र, गीत और नाटको से राजभवन शोभा देने लगा। सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्पित हो कल्पवृक्ष के समान शोभित हुए।

मूल—तएणं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ नो खलु मे कप्पइ अम्मापिउहिं जीवंतेहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

भावार्थ—तव (साढे छ. मास व्यतीत होने पर) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गर्भावस्था मे ही, अपनी माता के प्रगाढ स्नेह के कारण. इस प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञा) ग्रहण किया, कि जब तक मेरे माता-पिता जीवित हैं, तव तक मैं मुंडित होकर, गृहवास का त्यागकर दीक्षा अगीकार नही करूँगा।

मूल—तएणं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयवलिकम्मा, कयकोउय मंगलपाय-

च्छित्ता जाव सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं, नाइउण्हेहिं नाइतित्तेहिं, नाइकडुएहिं, नाइकसाएहिं, नाइअंबिलेहिं, नाइमहुरेहिं, नाइनिद्धेहिं, नाइलुक्खेहिं, नाइउल्लेहिं, नाइसुक्केहिं, सव्वत्तुभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायण गंधमल्लेहिं, ववगयरोगसोगमोहभयपरिस्समा सा जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं, गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहरेमाणी विचित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणाणुकूलाए विहार भूमिए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला सम्माणियदोहला अविमाणियदोहला, वुच्छिन्नदोहला ववणीयदोहला, सुहं सुहेण आसइ, सयइ, चिट्ठइ, निसीयइ, तुयट्टइ, विहरइ सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ।

भावार्थ—तदनन्तर उस त्रिशला रानी ने बलवर्द्धक व्यायाम आदि कर स्नान किया, कौतुक-मगल किये, और उसने सम्पूर्ण आभूषण धारण किये। वह त्रिशला रानी, न अत्यन्त ठडे, न अत्यन्त उष्ण, न अति तीखे, न अति कडवे, न अति कसैले, न अति खट्टे, न अति मोठे न अति स्निग्ध, न अति रूक्ष, न अति आर्द्र (गीले) न अति सूखे और सर्व ऋतुओ मे सुख देने वाले भोजन, वस्त्र, गध और माला द्वारा उस गर्भ का पोपण करने लगी वह, रोग, शोक, मोह, भय और परिश्रम से परे रहती हुई, उस गर्भ को हितकर, परिमित, पथ्यकारी

और पोपणीय योग्य स्थान, व योग्य समय पर भोजन करती हुई, दोष रहित कोमल शय्या और आसन का सेवन करती एकान्त सुखकारी, और मनके अनुकूल विहार भूमियों पर विचरण करने लगी। उस गर्भ के प्रभाव से, त्रिशला रानी को शुभ दोहद उत्पन्न हुए। सिद्धार्थ राजा ने, उसके वे सभी दोहद, यथासमय पूरे किये। उस के सभी मनोरथो का उन्होने समुचित सम्मान किया। उसके किसी भी मनोरथ की उन्होने तनिक भो कभी अवगणना नहो की अतएव दोहद के पूर्ण होने से वह दोहद रहित हुई। उसके सभी मनोरथ पूरे हो जाने से, वह आकाक्षा-रहित हो गई। जिस-जिस तरह से उसके गर्भ को सुख का अनुभव हो, वह ठीक वैसे-ही-वैसे स्तम्भादि का आश्रय लेती हुई, सोती, ठहरती, बैठती, और लेटती हुई सुख और स्वच्छन्दतापूर्वक उसका पालन-पोपण करने लगी।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्सेणं चित्तसुद्धस्स तेरसी दिवसेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं उच्चट्ठाणगएसु गहेसु पढमे चंदजोगे सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सव्वसउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पंसि मारूयंसि पवायंसि निप्फन्नमेइणीयंसि कालंसि पमुइअपक्कीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्तकालसम-

यंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएण आरोग्गारोग्गं दारयं पयाया ।

भावार्थ–यूँ उस काल (भगवान् महावीर के गर्भ में आने के बाद) ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष में, अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, पूरे नौ मास साढे सात दिन के बीत जाने, सूर्य चन्द्रादि ग्रहो के मेपादि उच्च स्थानो मे आने, प्रधान चन्द्र योग होने, दिशाओं के शान्त (धूल, वृष्टि रहित होने), अधकार रहित (प्रभु के पावन जन्म से सर्वत्र प्रकाश हो जाता है,) अतः और विशुद्ध (दिग्दाह रहित) होने सम्पूर्ण जयकारी शकुन होने, दक्षिण पवन के मन्द-मन्द, शीतल और सुगधित बहने, अनाज के खेतों मे धान्य के अधिक उत्पन्न होने, पृथ्वी के शस्य श्यामला होने, नगर निवासियो के सुखी और वासतिक क्रीडादि से प्रमुदित होने पर, मध्यरात्रि के समय, जब चन्द्रमा का हस्तोत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्र से योग हो रहा था, उस आनन्दमय शुभ समय में, महारानी त्रिशला ने अनाबाध (पीड़ा रहित) रूप से पुत्र रत्न को जन्म दिया ।

मूल–जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहिं य ओवयंतेहिं उप्पयंतेहिं य उप्पिंजलमाणभूया कहकहगभूया आवि हुत्था ।

भावार्थ–जिस रात्रि मे, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का जन्म हुआ, उस रात्रि में अनेको देव और देवियो के आने से, समस्त लोक मे, महान् उद्योत और कलकल नाद व्याप्त हो गया । (प्रसंगवश, यहा, सक्षिप्त

जन्माभिषेक का वर्णन किया जाता है—जिस समय, श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ, तीनो लोक मे प्रकाश हुआ । आकाश मे देव दुन्दुभी वजी । नरकवासी समस्त जीव भी क्षण भर के लिए सुखी और सतुष्ट हुए । सारे जगत मे आनन्द-ही-आनन्द छा गया । उसी समय, छप्पन दिक्कुमारियों के आसन कम्पायमान हुए । भोगकरा, भोगवती आदि आठ दिक्कुमारियो ने महावीर स्वामी का जन्म अवधिज्ञान से जान लिया । वे वहा आईं । प्रभु और प्रभु की माता को उन्होने श्रद्धा-पूर्वक नमस्कार करके, ईशान कोण मे एक सूतिकागृह वनाया । सवर्तक वायु से भूमि को विशुद्ध वनाकर, वहा सुगंधित जल उन्होने छिडका । मेघकरा इत्यादि आठ दिक्कुमारियो ने पुष्प वृष्टि की । नन्दोत्तरा आदि आठ दिक्कुमारियाँ दर्पण लेकर खड़ी रही । दूसरी सामाहारा आदि आठ कुमारियाँ कलश हाथ मे लेकर स्नानार्थ खडी रही । इलादेवी आदि आठ दिक्कुमारियाँ, भगवान की माता के आगे पखा झलने लगी । अलवुसा, पुंडरिका आदि आठ अन्य दिक्कुमारियाँ, चँवर ढलने लगी । विचित्रा आदि चार कुमारियाँ, हाथ मे दीपक लेकर, भगवान के सामने खडी रही । रूपा, सुरूपा आदि चार देवियो ने चार अगुल छोडकर अवशेप नाल को छेद, पास ही मे एक गड्ढा खोद, उसमे उसे डाल उस पर वेडूर्यरत्न का एक चबूतरा वना दिया । सूतिका गृह से, पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशाओ मे तीन उन्होने कदली गृह वनाये और उनमे सिहासन रक्खे । एक कदली घर में भगवान और उनकी माता को विठाकर, सुगधित तेल का मर्दन किया । दूसरे कदली घर मे उन्हे स्नान करवाकर, चन्दन का विलेपन करने के पश्चात् दोनो

को, रमणीक वस्त्र धारण कराये। तृतीय कदली गृह मे सिहासन पर उन्हे बिठाकर चिरन्तन आयु का आशोर्वाद दे मणिरत्न के दो गोलो को, भगवान की क्रीडा के लिए उनके पालने से बाध दिये। तब भगवान और उनकी माता को जन्म स्थान मे ले जाकर गीत गान करती हुई वे दिक्कुमारियाँ अपनी-अपनी दिशाओ मे वापस चली गईं। छप्पन दिक्कुमारियाँ के महोत्सव करने के बाद, भगवान के पुण्य-प्रभाव से, चौसठ इन्द्रो के सिहासन कापने लगे। तब अवधिज्ञान द्वारा चरम तीर्थङ्कर का जन्म जान सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र ने घटे बजवाये, और भगवान का जन्म-महोत्सव मनाने को जाने को सर्वत्र घोषणा उन्होने की। सभी देव इन्द्र के पास आये। सभो इन्द्र अपने-अपने विमानो मे बैठ सपरिवार नन्दोश्वर द्वीप मे आये। कितने हो देव इन्द्र की आज्ञा से, कितने ही मित्र के वचनो से, कितने ही अपनी देवाङ्गनाओ के आग्रह से, कितने ही अपने-अपने भाव से, कितने ही कौतुक मिस और कितने ही अपूर्व आश्चर्य देखने का बहाना बनाकर, आपस मे वार्तालाप करते हुए रवाना हुए। नन्दीश्वर द्वीप मे विमानो का त्याग किया, विश्राम लिया और सीधे वे मेरू पर्वत पर गये। सोधर्मेन्द्र महावीर स्वामी के पास आकर, भगवान और उनकी माता को नमस्कार कर कहने लगा, "हे रत्नकुक्षि! आपको सादर नमस्कार हो। मै सौधर्मेन्द्र हूँ। आपने चौबीसवे तीर्थङ्कर को जन्म दिया है। मै उनका जन्म महोत्सव मनाने को आया हूँ। आप डरे नही" यूँ कहकर उसने अवस्वापिनो निद्रा उन्हे दी। तब भगवान को वहा से उठाकर मेरु पर्वत के पाडुक वन मे पाडुक शिला के ऊपर वाले सिहासन पर भगवान

॥ ११० ॥

को गोद मे लेकर वह वैठ गया। सर्व देवेन्द्रो ने अपने-अपने सेवक देवो को, इस प्रकार आज्ञा दी, कि देवो एक हजार आठ सोने के, उतने ही चादी तथा रत्नो के, उतने ही सोने-चादो के, उतने ही सोने और रत्नो के, उतने ही चादी और रत्नो के, उतने ही सोने-चांदी और रत्नो के कलश, और उतने ही मिट्टी के कलश और सम्पूर्ण स्नान की सामग्री लाओ। वे देव उस समय क्षीर समुद्र, गगा, सिन्धु, पद्मद्रहादि तीर्थो के जल से भरे हुए तथोक्त कलशो को लेकर स्नान की सामग्री सहित आ गये। और भगवान का अभिषेक कराने के लिए इन्द्र की आज्ञा की राह देखने लगे। उस समय, इन्द्र के मन में संशय उत्पन्न हुआ, कि— भगवान का शरीर छोटा-सा है और जव इतने कलशो की धारा पडेगी, तो भगवान का शरीर कही का कही वह जावेगा। भगवान का कोमल शरीर इन धाराओ के प्रवाह को कैसे सह सकेगा ! तब भगवान ने अवधि-ज्ञान से इन्द्र के मनका सशय जान, उसे दूर करने के लिए अपने वाये पैर के अगूठे से सिहासन को दबाया। सिहासन के दवते ही लाख योजन का मेरू पर्वत थर-थर कांप उठा। धरती धूजने लगी। पर्वतो के शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। समुद्रो का जल उछलने लगा। सभी देव क्षोभित हो उठे। उस समय, इन्द्र ने विचारा, कि यह क्या उत्पात हुआ। उसने अवधिज्ञान का उपयोग किया और भगवान का वल जानकर विचार किया, कि तीर्थङ्करो मे अनन्त वल है। उसने भगवान से अपने अपराध की क्षमा मागी और भगवान का अभिपेक करने के लिए देवो को आज्ञा दी। सर्व इन्द्रो ने यथानुक्रम अभिपेक क्रिया पूरी की। सौधर्मेन्द्र

ने चार वृषभो का रूप धारण कर आठ श्रृङ्गो की धारा से, भगवान का यथोचित रूप से अभिषेक किया। देव दूष्य से शरीर पोंछा गया। चन्दन का लेप किया। इस तरह स्नान कराके, प्रभु के आगे आठ मगल स्थापित किये। और भक्तिपूर्वक भगवान को माता के पास रखकर, माता की अवस्वापिनी निद्रा दूर करके रत्नजटित दो कुंडल और देव दूष्य का जोडा देकर, जन्माभिषेक करके चौसठ इन्द्र और सर्व देवता अपने-अपने स्थान पर लौट गये।

मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमणकुंड-धारी तिरियं जंभगा देवा सिद्धत्थरायभवणंसि हिरण्णवासं च सुवण्णवासं च, वयरवासं च वत्थवासं च, आभरणवासं च, पत्तवासं च, पुप्फवासं च, फलवासं च, बीयवासं च, मल्लवासं च, गंधवासं च, चुन्नवासं च, वण्णवासं च, वसुहारवासं च वासिंसु।

भावार्थ—जिस रात्रि मे, श्रमण भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ, उस रात्रि मे कुबेर के आज्ञानुवर्ती, तिर्यग्लोक निवासी, जृम्भक देवो ने सिद्धार्थ राजा के भवन मे, चादी, सुवर्ण, हीरा, वस्त्र, आभरण, नागरवेलादिपान, पुष्प, फल, शाली इत्यादि बीज, पुष्पमाला, सुगन्धित द्रव्य अबीर इत्यादि चूर्ण, हिगुल इत्यादि शुभवर्ण वाले पदार्थो के साथ द्रव्य की वर्षा की। प्रात काल, प्रभु जन्म के शुभ समाचार लेकर प्रियवदा

दासी सिद्धार्थ राजा के पास वधाई देने को गई। वदले मे राजा सिद्धार्थ ने, प्रमुदित होकर, वहुमूल्य वस्त्राभूपण से उसका सम्मान कर, उसके दासीपन को दूर कर दिया।

मूल—तएणं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइवाणवंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी।

भावार्थ—तत्पश्चात् भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवो के द्वारा तीर्थङ्कर प्रभु का जन्माभिपेक महोत्सव किया जा चुकने पर, प्रात काल मे, राजा सिद्धार्थ ने नगर-रक्षको को वुलाकर यूँ कहा—

मूल—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कुंडग्गामे नगरे चारगसोहणं करेइ करित्ता माणुम्माणवद्धण करेह करित्ता कुंडपुरं नगरं सब्भिंतर वाहिरियं आसियसंमज्जिओवलित्तं सिंघाडगतियचउक्कचच्चर चउम्मुहमहापहेसु सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं,मंचाइमंचकलियं नाणाविहारागभूसियज्झयपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीससरसत्तरचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसं वन्दणघणसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं आसत्तो-

सत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लादामकलावं पंचवन्नसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरूपवरकुंदुरूक्कतुरूक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगन्धवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नडनट्टग,जल्लमल्लमुट्ठियवे लवंगकहगपठगलासग आरक्खगलंखमंखतूणइल्लतुंबवीणियंअणेगतालायराणुचरियं करेह करावेह करित्ता कारवित्ता य जूयसहस्सं मुसलसहस्सं चउस्सवेह, उस्सवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

भावार्थ—देवानुप्रियो, शीघ्र ही क्षत्रियकुडग्राम नगर के बन्दीगृहो (जेलखानो) से कैदियो को मुक्तकर दो। दुकानदारो से कहदो कि घी, अनाज, वस्त्र, आदि पदार्थ सस्ते बेचे। इस तरह, जो भी उनका नुकसान होगा, सबका सब राज्य-कोप से दिया जावेगा) सारे नगर के भीतर तथा बाहरी भागो से कूडा-कचरा हटाकर, सुगधित जल के छिडकाव और गोबर आदि की लीपा-पोती से स्वच्छ करा दो। शृङ्गारक (तिकोने रास्ते) तीन रास्ते, चार रास्ते, वहुत से रास्ते, राजमार्ग और सामान्य सभी मार्गो मे जल का छिडकाव कराओ, उन्हे पवित्र बनाओ, कचरा वगैरा दूर करवाकर, उन्हे चौरस बनवादो। इसी तरह शहर की सम्पूर्ण गलियो ओर बाजारो को स्वच्छ करवा के उन्हे सजवादी। स्थान-स्थान पर नाटकादि देखने को दर्शको के बैठने के लिए मचादि बधवाओ। अनेको प्रकार के वर्णवाली सिह ध्वज, गरुड़ ध्वज, इत्यादि ध्वजा-पताकाएँ

फहराओ। सभी मकानो व स्थानो को गौबरादि से लीपाकर, कलई आदि से उनकी पोताई कराओ। गोशीर्ष चन्दन सरस रक्त चन्दन, पर्वताय चन्दन, आदि से भीतो पर हाथ के थापे लगाओ। घरो के चौक पुतवाओ, जिन पर मागलिक कलश रखवाओ। द्वार-द्वार पर चन्दन के कलश, वन्दनमाल और तोरण बधाओ। लम्बी, विस्तृत और गोलाकार सुगन्धित फूलो की मालाएँ लटकाओ। पाच वर्ण के सरस और सुगन्धित पुष्पो के समूह से सारे नगर को शोभायमान करो। पुष्प गृह बनाओ, कृष्ण गुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरूक, तुरुष्क, आदि सुगधित द्रव्यो के दशॉग धूप से सारे नगर को सुगन्धित करदो। अन्य सुगंधित पदार्थो से सुगध को यूँ फैलाओ कि कपूर आदि की गोलियो का भाति सारा नगर सुरभित हो उठे। नट (अभिनय आदि की कला मे प्रवीण) नर्तक (नाचने वाले) जल्ल (रस्सी पर खेल करनेवाले), मल्ल (कुश्ती लडनेवाले), मुष्टिक (मुष्टियो की लडाई करनेवाले), विडम्बक (विदुपक भाड) रसिक कथा कहनेवाले, अथवा नदी, गर्त, आदि लाघनेवाले लासक (रामलीला करनेवाले), आरक्षक (शुभाशुभ कहनेवाले) लख (बास पर चढकर खेलनेवाले), मख चित्रपट हाथ मे रखकर भिक्षा मागनेवाले) तूणीर धारण करनेवाले, वीणा बजानेवाले, ताली बजाकर कथा व नाटक करनेवाले इन सभी जाति के व्यक्तियो को बुलवाकर, गीत, गान, नाटक, वादित्र शुरू कराओ। हजारो गाडियो के जूडे (युग), और हजारो मूसल खडे करवाओ (वृद्ध आचार्यो की मान्यता है, कि इसका उद्देश्य उत्सव काल मे गाडी जोतना और मूसल से खाडने का निषेध करना ध्वनित होता है)। उपरोक्त सारे कामो

को, समय पर करके, वा करवा के मुझे सूचित करदो।

मूल—तएणं कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव कुंडपुरे नगरे वारग सोहणं जाव उस्सवित्ता जेणेव सिद्धत्थेखत्तिए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स रन्नो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

भावार्थ—सिद्धार्थ राजा को यूँ आज्ञा पाकर, वे कौटुम्बिक पुरुष बडे ही हर्षित हुए। वे हाथ जोड़ और राजाज्ञा को शिरोधार्य कर शीघ्र ही कु डपुर नगर के वन्दीगृहो से कैदियो को मुक्त करवा ओर पुर्वोक्त सारे कार्यो को यथाविधि सम्पन्न करके जहा राजा सिद्धार्थ थे, वहा आये और हाथ जोडकर राजाज्ञा के अनुसार सभी कार्यों के पूर्ण हो चुकने की सूचना दी।

मूल—तएणं से सिद्धत्थे राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव सव्वा-रोहेणं सव्वपुप्फगन्धवत्थमल्लालंकारविभूसाए, सव्व तुडियसद्दनिनाएणं महया इड्ढिए महया जुईए महया वलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वर तुडियजमगसम-

गप्पवाइणं, संखपणवपडहभेरीझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरजमुइंगदुंदुहिनिग्घोसनाइयरवेणं उस्सुक्कं उक्करं, उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदंडिमकुदण्डिमं अधरिमं,गणियावरनाडइज्जकलियं, अणेगतालायराणुचरियं, अणुद्धयमुइंगं, अमिलायमल्लदामं पमुइयपक्कीलियपुरजणजाणवयं दसदिवसं ठिइवडियं करेति ।

भावार्थ—इसके पश्चात् राजा सिद्धार्थ व्यायामशाला मे गए । कुश्ती आदि पहलवानो के कामो से निपटे । तेल की मालिश करवाई, स्नान और विलेपन किया । तव मन और मौसिम के अनुसार वस्त्रो को धारण कर, सर्व प्रकार के पुरुषोचित श्रृङ्गार से अपने शरीर को उन्होने सजाया । वही वानक उनके परिवार ने भी किया । तव अनेको प्रकार के वाद्यो की ध्वनि, महान् ऋद्धि, वडी कान्ति, उचित वस्तुओ के सुयोग, विशाल चतुरगिणी सेना, अनेको रथादि वाहनो, भारी जन-समूह के साथ, एक साथ वजते हुए शख, पणव, भेरी, झल्लरी, खर मुखी, हुडुक्क, ढोल, मृदग, दुन्दुभी, ताल, वीणा, सहनाई आदि वादित्रो के शब्द और प्रतिशब्द से जन्म महोत्सव वे मनाने लगे । दस दिन तक जकात तथा अन्य कर बन्द कर दिए गए । खेतो का लगान छोड दिया गया । लोगो को सूचना दे दी गई कि दस दिन तक जो-जो और जितनी भी चीजे चाहिए, वे विना मूल्य दिए, राज्य की दुकानो से ले जावे । राज्य के कोप से उनका मूल्य चुका दिया जावेगा । राजा के

॥ ११७ ॥

सिपाही किसी के घर जाकर उसे तकलीफ नही दे सकते थे । राजा ने दण्ड अर्थात् अपराध के अनुसार, द्रव्य लेना अदण्ड अर्थात् बड अपराध मे अल्प द्रव्य लेना, इन सबका एकात त्याग कर दिया । आपस मे कोई भी धरना देना अथवा ऋण को माग नही कर सकता था । रूपवती वेश्याओ का नाटक शुरू हुआ । अनेक तालचर वगैरह के नाटक प्रारम्भ हुए । अनेक मृदगादि वाद्य वजने लगे । पाच वर्ण के सुगन्धित पुष्पो की अम्लान मालाएँ लटकाई गई । नगर और देश की दशो दिशाओ मे अत्यन्त हर्ष फैल गया । नगर-निवासी आमोद-प्रमोद और क्रीडा मे निमग्न हो गए । यूँ अपने वश को मानमर्यादा के अनुसार, राजा ने दस दिन तक बडे ही ठाट-बाट के साथ पुत्र जन्मोत्सव मनाया ।

मूल—तएणं सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए, सइए य, साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य लभे पडिच्छमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं वा विहरइ ।

भावार्थ—उस अवधि मे राजा ने सकडो ही प्रकार के हजारो और लाखो के मोलके धर्म के, दान के और भागानुसार वितरण के कार्य किए और करवाए । बदले मे हजारों और लाखो की भेटे मिली । यूँ पुत्र जन्मोत्सव मनाते हुए राजा सिद्धार्थ सुख-पूर्वक विचरने लगे ।

मूल—तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइवडिमं करेन्ति, तइए दिवसे चन्दसूरदंसणियं करेंतिं, छट्ठे दिवसे धम्म जागरियं जागरेंति, एक्कारसमे दिवसे विइक्कंत, निव्वत्तिए असुइजम्मकम्मकरणे, संपत्ते वारसाहदिवसे विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं उवक्खडावेइ २ त्ता मित्तनाइनियगसयण संबंधिपरिजणं नायए खत्तिए य आमंतेइ २ त्ता तओ पच्छाण्हाया कयबलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं, पवराइं वत्थाइं परिहिया, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा भोयणवेलाए, भोयणमण्डवंसि सुहासणवरगया तेणं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणेणं नायएहिं खत्तिएहिं सद्धि तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा, परिभाएमाणा एवं वा विहरंति ।

भावार्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता ने पुत्र-जन्म के प्रथम दिन, अपने वंश की परम्परा के अनुसार जन्मोचित सभी प्रकार के अनुष्ठानो को सम्पन्न किया । तीसरे दिन, चन्द्र और सूर्य के दर्शन कराये । छठे दिन माता-पिता ने धर्म-जागरण किया । ग्यारहवे दिन, सर्व प्रकार की अशुचि का निवारण

॥ ११६ ॥

किया । स्नानादि करके नूतन वस्त्रो को धारण किया । बारहवे दिन, अशन अर्थात् अन्नादि, पान अर्थात पेय पदार्थ, खादिम अर्थात् मिष्टान्नादि, स्वादिम, इलायची आदि, चारो प्रकार के आहारो को तैयार करवाया गया । राजा ने अपने मित्रो, जाति वालो, पुत्र पौत्रादिको, काका, आदि स्वजनो, श्वसुरादि सम्बन्धियो, दास-दासियों, गोत्रीय बन्धु-बान्धवों, तथा अन्य क्षत्रियो, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि नगर निवासियों, सभी को निमंत्रण दिया । स्नान, कौतुक, मगल आदि मानते-मानते हुए, सर्षव, दूर्वा आदि मागलिक पदार्थों को मस्तक पर धारण किया । स्वच्छ, मगलकारो.प्रसगोचित, बहुमूल्य वस्त्र पहने । दृष्टि दोष के निवारणार्थ लोह-मुद्रिका व बहुमूल्य और शरीर को अलकृत करनेवाले अनेको प्रकार के आभूपणो को धारण कर भोजन के समय भोजनमडप मे सुख से जाकर वे बैठ गये । मित्र, जाति, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और वश के, तथा अन्य क्षत्रियादि के साथ, विपुल अशन, पान, खादिम, और स्वादिम चारों प्रकार के आहार का आस्वादन (इक्षुवत् अल्प खाने, और अधिक त्यागने योग्य, वस्तुओ वाले आहार) विस्वादन (बहुत खाने योग्य अल्प त्यागने योग्य, खजूरादि), परिभोग (लड्डू आदि सर्व खाने योग्य), और परिभाजन (परस्पर परोसते हुए) करते हुए आनन्द से विचरने लगे । युग दम्पति ने भोजन किया व आमंत्रित सभी जनो को भक्ति-भावपूर्वक भोजन कराया ।

मूल—जिमिय भुतुत्तरागया विय णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूआ तं मित्त-

नाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए खत्तिए य विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणस्स नायाण य खत्तियाण य पुरओ एवं वयासी ।

भावार्थ—भोजन कर लेने के पश्चात्, कल्ले वगैरह से मुखशुद्धि करके पवित्र हो जाने पर बैठने के स्थान मे बैठे हुए राजा-रानी ने वहा आये हुए उन सभी पुरुषो का, सुगन्धित पुष्प, वस्त्र, गध माला और अमूल्य अलंकारादि से बड़ा भारी सत्कार किया । तब वे उनसे यूँ बोले—

मूल—पुव्विंपि णं देवाणुप्पिया ! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि इमे एयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था, जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवण्णेणं, धन्नेणं, रज्जेणं जाव सावइज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो सामन्तरायाणो वसमागया य तं जयाणं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तयाणं अम्हे एयस्स दारगस्स इमं एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणु त्ति ता अज्ज अम्हं मनोरहसपत्ती जाया

तं होउणं अम्ह कुमारे वद्धमाणे नामेणं ।

भावार्थ—देवानुप्रियो, पहले जब यह बालक माता की कोख में आया था, हमें इस प्रकार का प्रार्थित संकल्प हुआ था, कि जब से यह बालक गर्भ मे आया है तभी से, हम चादी से, सोने से, धन से, राज्य से, और सम्पूर्ण सारभूत द्रव्यो से, प्रीति-सत्कार से, निरन्तर रूप से महान् वृद्धि को प्राप्त हो रहे है। यही नही, चण्डप्रद्योत आदि सामन्त राजा हमारे अधीन बन गये। तभी हमने यह विचार किया था, कि जब यह बालक उत्पन्न होगा, हम इसका गुणानुरूप, गुणनिष्पन्न "वर्द्धमान" नाम रक्खेंगे। आज, हमारा वह मनोरथ पूरा हुआ। अतः आप लोगो के समक्ष, इस बालक का नाम हम 'वर्द्धमान' रखते है।

मूल—समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं तस्स णं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा—अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे, सहसमुइयाए समणे अयले भयभेरवाणं परिसहोवसग्गाणं खंतिखमे पडिमाणं पालए धीमं अरतिरतिसहे दविए वीरियसंपन्ने देवेहिं से नाम कयं समणं भगवं महावीरे ।

भावार्थ—काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के तीन नाम इस प्रकार कहे जाते है—(१) माता-पिता द्वारा दिया हुआ नाम 'वर्द्धमान' (२) तप में परिश्रम करने की शक्ति जन्म से ही प्रकट होने के कारण

प्रभु का दूसरा नाम 'श्रमण' (श्राम्यतीति श्रमणः—तपोनिधिः—इतिव्युत्पत्ते) और (३) भय (विद्युत आदि आकस्मिक भय), भैरव (सिंहादिक का भय), इन दोनो में अचल भाव से रहने के कारण, परिषह और उपसर्गो को क्षमा-पूर्वक सहन करने से (असमर्थता से नहो) प्रतिमाओ (भद्रादि भिक्षु-प्रतिमा) का और अभिग्रहो का पालन करने से, तीन ज्ञान से युक्त होने से, अरति-रति को सहनेवाले, सुख-दुख में समभाव रखनेवाले होने से, गुणो के भाजन होने मे, तथा वीर्यसम्पन्न होने के कारण मोक्ष प्राप्त करना नियत हो जाने पर तपस्या और चारित्र मे प्रवृत्ति करनेवाले होने से, देवो द्वारा दिया हुआ "महावीर" नाम प्रसिद्ध है।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स पिया कासवगुत्ते णं तस्स णं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा—सिद्धत्थे इवा सिज्जंसे इवा जसंसे इवा। समणस्स भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठसगुत्ते णं तीसे तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जन्ति तं जहा—तिसला इवा, विदेहदिन्ना इवा पीइकारिणी इवा। समणस्स भगवओ महावीरस्स पित्तिज्जे सुपासे जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे, भगिणी सुदंसणा, भारिया जसोया कोडिन्नागुत्ते णं। समणस्स भगवओ महावीरस्स धूआ कासवगुत्तेणं तीसे दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा—

अणोज्जा इवा पियदंसणा इवा । समणस्स भगवओ महावीरस्स नत्तुई कासवगुत्तेणं तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा–सेसवई इवा जसवई इवा ।

भावार्थ–काश्यपगोत्री, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पिता के तीन नाम इस प्रकार कहे जाते है–(१) सिद्धार्थ (२) श्रेयास और (३) यशस्वी । उनका माता जो वशिष्ट·गोत्रोया थी, उनके भी तीन नाम है—(१) त्रिशला, (२) विदेहदिन्ना और (३) प्रीतिकारिणी । उनके काका, 'सुपार्श्व', ज्येष्ठ भाई, 'नन्दीवर्धन', वहिन, 'सुदर्शना', और पत्नी, 'यशोदा' कौडिन्य गोत्रवाली थी । उनकी पुत्री, काश्यपगोत्री के दो नाम है । (१) अनोद्या ओर (२) प्रियदर्शना तथा उनकी दोहित्री के दो नाम इस प्रकार है—(१) शेपवती और (२) यशस्वती ।

मूल–समणे भगवं महावीरे दक्खे, दक्खपइन्ने, पडिरूवे, आणीणे, भद्दए, विणीए, नाए, नायपुत्ते, नायकुलचंदे विदेहे, विदेहदिन्ने, विदेहजच्चे, विदेहसुमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिउहिं देवत्तगएहिं, गुरुमहत्तरएहिं, अब्भणुण्णाए, सम्मत्तपइन्ने पुणरवि लोयंति एहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाववग्गूहिं अणवरयं अभिनन्दमा-

णा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी ।

भावार्थ—श्रमण भगवान महावीर सर्व कलाओ मे निपुण, प्रतिज्ञा-पालक, प्रतिरूप (जैसे, दर्पण मे प्रत्येक वस्तु स्पष्टतया दिखाई देती है, वैसे ही भगवान मे सर्वगुण स्पष्टतया झलकते है, अतएव) जितेन्द्रिय, सरल-स्वभावी, अथवा सर्वकल्याण प्रदायी, विनयशील, प्रख्यात, जाति कुल मे चन्द्रमा के समान, सिद्धार्थ राजा के पुत्र, विशिष्ट देह कांतिवाले, वज्रऋषभनाराच सहनन और समचतुस्र सस्थानवाले, वैराग्य सम्पन्न होने से निर्लेप, विदेहदिन्ना (त्रिशला रानी) के पुत्र त्रिशला रानी के अगजात और गृहस्थावास मे ही (दीक्षा के पश्चात् तपश्चर्यादि मे कठोर) थे। पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट, श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष की अवस्था तक गृहस्थाश्रम मे रहकर, माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर, ज्येष्ठ भ्राता और राज्य प्रधानो की आज्ञा प्राप्त करके, अठाईस वर्ष की उम्र मे अपने ज्येष्ठ बन्धु, नन्दीवर्धन के अत्यन्त आग्रह से, भगवान् दो वर्ष तक और गृहस्थाश्रम मे रहे। लेकिन इन दो वर्षो मे वे पूर्ण ब्रह्मचारी रहे। अपने निमित्त आरम्भ करने कराने का त्याग करके, प्रासुक भोजन व अचित्त जल पर निर्भर रहे। सचित्त जल से स्नान भी नही किया। इस तरह विरक्त और अनासक्त बन, अपने भाई के विशेष आग्रह के कारण दो वर्ष तक और भी प्रभु गृहस्थाश्रम में बने रहे। पश्चात् भाई की आज्ञा प्राप्त करके तथा गर्भावस्था मे की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर दीक्षित होने की तैयारी कर रहे थे, कि नव लौकान्तिक देव अपने जीतकल्प व्यवहारानुसार, इष्ट यावत् मनोहरादि

॥ १२५ ॥

गुणवाली वाणी द्वारा, भगवान का निरन्तर स्तुति तथा गुण कीर्तन करते हुए प्रतिबोधार्थ इस प्रकार कहने लगे। यद्यपि तीर्थङ्कर भगवान् स्वय प्रबुद्ध होते है परन्तु देव अपने जीतव्यवहार के अनुसार, प्रतिबोध के लिए आते ही है।

मूल—जय जय नन्दा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा। बुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! सयलजगज्जीवहियं पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सइ त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति।

भावार्थ—स्वामिन् आपको जय-विजय हो ! हे कल्याणकारी, क्षत्रिय-वर वृषभ ! आप जगज्जीवो का हित करे। आप उनका कल्याण साधन करे। हे भगवन्, हे लोकनाथ, आप प्रतिबोध पावे, और दीक्षा लेकर केवल-ज्ञान के पूर्ण अधिकारी बन सकल जग जीवो के लिए महान् हितकारक, धर्म-तीर्थ को प्रवर्तित करे। क्योंकि, यह तीर्थ ससार के सभी जीवो को हितकर, सुखकारी और मोक्ष दाता होगा। यूं कहकर वे लौकान्तिक देव, जय-जय शब्द करने लगे।

मूल—पुव्विं पि णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्सगाओ गिहत्थ धम्माओ अणुत्तरे आहोइए अप्पडिवाई नाणदंसणे होत्था। ततेणं समणे भगवं महावीरे तेणं

अणुत्तरेणं आहोइएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ २ त्ता चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं, चिच्चा रज्जं, चिच्चा रट्ठं एवं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं, चिच्चा पुरं, चिच्चा अंतेउरं, चिच्चा जणवयं, चिच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावइज्जं, विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दायरेहिं परिभाइत्ता दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता ।

भावार्थ—श्रमण भगवान् महावीर को, मनुष्योचित गृहस्थ-धर्म (विवाह से पूर्व ही), अनुत्तर-प्रधान, अप्रतिपाती (केवल ज्ञान पर्यन्त रहने वाले) जानने और देखने के साधन अवधि-ज्ञान और अवधि-दर्शन थे । भगवान् उस अनुत्तर, अलौकिक अवधिज्ञान और अवधि-दर्शन के द्वारा अपने दीक्षा ग्रहण के समय को जानते थे काल को जानकर उन्होने चादी, सोना, धन. धान्य, राज्य, राष्ट्र, सेना, रथादिवाहन, भडार, धान्य के कोठार नगर, अन्त पुर, जनपद, विपुल धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न, इत्यादि सारभूत उत्तमोत्तम द्रव्यो का सर्वथा त्यागकर और गुप्त द्रव्य का दानार्थ प्रकाशन कर दिया । दान लेनेवाले याचको तथा सगोत्रियो मे उसका उचित विभागकर निकल पडे । इमसे वर्षीदान का सूचन किया गया है । भगवान् ने अपने दीक्षा काल के, एक वर्ष पूर्व ही से, प्रात काल, प्रतिदिन, एक करोड, आठ लाख सौनैयो का

दान देना शुरू कर दिया था। एक वर्ष मे, तीन सौ इठयासी करोड, अस्सी लाख सौनैये दी जाती थी। इन्द्र की आज्ञा से देवता प्रतिदिन भडार मे सोनैयो की वृष्टि कर देते थे और भगवान् उन्हे दान मे दे देते थे।

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिर बहुले तस्स णं मग्गसिर बहुलस्स दसमी पक्खेणं पाइणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुरमाण पूंसमाण घंटिय गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी।

भावार्थ–उस काल, श्रमण भगवान् महावीर हेमन्त ऋतु के प्रथम मास के प्रथम पक्ष मे, मगसर कृष्ण दशमी को, छाया के पूर्व दिशा मे जाने, और प्रमाण प्राप्त दिवस के अन्तिम प्रहर के होने पर, सुव्रत नामक दिन मे, विजय मुहूर्त के समय चन्द्रप्रभा नाम की शिविका (पालकी) मे विराजे। तत्पश्चात् देव, मनुष्य, एव असुरो की परिषदा के साथ, शख बजानेवाले, चक्रधारी, हल धारण करनेवाले (हलकी आकृति का आभूषण धारण करनेवाले भाट विशेष) हो–हुजूरी के हामी, छोटे-छोटे कुमारो को श्रृङ्गार करवा के कधे पर उठाकर चलनेवाले, विरुदावली गायक और घटा बजानेवाले, आदि पुरुष जय-घोष के साथ भगवान् को स्तुति करते

॥ १२८ ॥

हुए चले। पूर्वोक्त मनुष्यो से अनुगम्यमान होते हुए, प्रभु को, उनके कुटुम्वी-जन, और इष्ट लोग, कान्त और मनोजवाणी द्वारा, प्रभु का अभिवादन करते और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

मूल—जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अभग्गेहिं नाणदंसणचरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियवद्धकच्छे, मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलुक्करंगमज्झे पावयवितिमिरमणुत्तरं केवलवरनाणं, गच्छ य मुक्खं परं पयं, जिणवरोवइट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं हंता परीसहचमुं जय जय खत्तियवरवसहा ! वहूइं दिवसाइं वहूइं पक्खाइं, वहूइं मासाइं, वहूइं उऊहिं, वहूहिं अयणाहिं, वहूइं संवच्छराइं अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ तिकट्टु जयजयसद्दं पउंजंति।

भावार्थ—हे समृद्धिवान्, हे भद्रकारक, आप जयवन्त हो, आपका कल्याण हो। अभग (निरतिचार) ज्ञान, दर्शन और चारित्र के द्वारा, दुर्जय इन्द्रियो पर आप विजय प्राप्त करे। अगीकृत साधु धर्म का पालन

करते हुए आप विघ्नविजयी बने, निर्विघ्न रूप से मोक्ष मे आप निवास करे। तप के द्वारा राग और द्वेष रूपी मल्लो का नाश करे। धीरज से कमर कसकर उत्तम शुक्लध्यान द्वारा, आठकर्म रूपी शत्रुओ का मर्दन आप करे। हे वीर! अप्रमत्त होकर तीन लोक रूपी-रग-मडप (अखाड़े) मे विजय पताका आप फहरावे। आवरण रहित और सर्वोत्तम केवल ज्ञान आप प्राप्त करे। ऋषभादि जिनेश्वरो द्वारा उपदिष्ट, सरल मार्ग के अनुगामी बन, परिषहों की सेना का नष्ट करके, मोक्ष रूपी-परमपद को आप प्राप्त करे। हे क्षत्रिय-वश अवतश, आपकी जय हो! अनेको दिन, पक्ष, अनेकों मास, अनेको ऋतु, अनेको अयनो, (छ. मास का एक अयन) तथा अनेको वर्षो तक परिषह एवं उपसर्गों से निर्भय बन, क्षमा-पूर्वक भयंकर भय-भैरवों को सहन करके, साधु धर्म का पालन आप करे। आपके सयम-धर्म मे विघ्नो का अभाव हो। यूँ कहकर, वे स्वजन जय-नाद करने लगे।

मूल—तएणं समणे भगवं महावीरे नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, हियमाला सहस्सेहिं उन्नंदिज्जमाणे उन्नंदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे कंतिरूवगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, अगुंलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे, दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारीसहस्साणं अंजलिमाला सहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे भवणंपति-

सहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे, तंतीतलताल तुडिगीयवाइयरवेणं महुरेणं य मणहरेणं जयजयसद्दघोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे, सव्विढ्ढीए सव्वजुईए सव्ववलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं, सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं, सव्वपगईएहिं, सव्वनाडएहिं, सव्वतालायरेहिं सव्वावरोहेणं सव्वपुप्फगंधवत्थमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडियसद्दसंनिनाएणं,महया इढ्ढीय महया जुईए महया वलेणं, महया वाहणेणं, महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संखपणवपडह भेरीझल्लरिखर मुहिहुडुक्कदुंदुहिं निग्घोसनाइयरवेणं कुंडपुरं नगरं मज्झं मज्झेणं निगच्छइ २ त्ता जेणेव नायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ।

भावार्थ–भगवान् महावीर, हजारो नेत्रो की पक्तियो द्वारा देखे जाते हुए, हजारो ही मुखो से स्तुति किये जाते हुए, हजारो हृदयो द्वारा जय, विजय, चिरञ्जीद, इत्यादि शब्दो के चिन्तन से समृद्धि पाते हुए, हजारो मनोरथो द्वारा स्पर्श किये जाते हुए, (हम इनकी आज्ञा को मस्तक पर धारण करे। ऐसा मनुष्यो द्वारा

विकल्प करने से तथा उस विकल्प को पूरा पार उतरने से), काति, रूप, और गुणो से प्रार्थना किये जाते हुए (ये हमारे स्वामी हो, तो अच्छा। इस प्रकार लोग इच्छा करते थे) अपने दाहिने हाथ से हजारो ही नरनारियो के नमस्कार को स्वीकार करते हुए, हजारो भवनो की पक्तियो का उलघन करते हुए, वीणा, तलताल, वादित्र, गीत, वाद्य आदि के शब्द से, मधुर और मनोहर जय घोप से मिश्रित, एव अव्यक्त कोलाहल में भी सावधान रहते हुए, छत्रादि राज्यऋद्धि, आभूषणो की कान्ति, हाथी, घोडों आदि की सेना, रथ, आदि वाहन, सर्वजन समुदाय, सर्व प्रकार के सम्मान, विभूति, शोभा हर्प की उत्सुकता, सभी जनो का ससर्ग, नगर मे रहने वाली सभी तरह की प्रजा, सर्व नाटक, समस्त ताल भेद, सभी अन्तःपुर, सभी पुष्प, गन्ध, वस्त्र, माला अलकारादि की शोभा शंख, ढोल, पटह, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क. दुन्दुभी आदि के घोप प्रतिघोप के शब्द से युक्त होकर कुण्डलपुर नगर के मध्य भाग में निकलकर, जहा ज्ञात खंडवन नाम का उद्यान था वहा पधारें और उसमै जहा सुन्दर अशोक का वृक्ष था, वहा आये।

मूल—उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहेसीयं ठावेइ २ त्ता सीयाओ पच्चोरुहइ २ त्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ २ त्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं

नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगे अवीए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

भावार्थ—उस अशोक वृक्ष के नोचे उनकी पालकी रक्खी गई । भगवान् पालकी के नीचे उतरे ओर स्वय, अपने शरीर पर के सभी आभूपणो, मालाएँ, और अलंकारो को उतारने लगे और स्वय हो ने पच मुष्टि लोच भी किया । भगवान् ने चौविहार (निर्जल) दो उपवास (वेला) किये । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, केवल एक देवदूष्य वस्त्र ले, और अकेले ही द्रव्य भाव से मु डित हो, भगवान महावीर ने गृहवास का त्याग करके, प्रव्रज्या अङ्गीकार की । दीक्षा लेने के वाद ही भगवान को मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो गया । भगवान का दोक्षा महोत्सव करके, इन्द्रादि देव स्वस्थान पर चले गये । नन्दीवधन राजा ओर अन्य जन भी अपने घर आये । भगवान भी वहा से विहार करके, कुमार ग्राम के पास आकर कायोत्सर्ग मे खडे रहे । उसी समय एक ग्वाला, प्रभु को अपने वल सम्भाले रहने की वात कहकर, घर को चला गया । वैल चरते-चरते दूर निकल गये । ग्वाला वापस आया और वैलो को वहा न देखकर भगवान से उनके लिए पूछताछ करने लगा । ध्यानस्थ प्रभु के उत्तर न देने पर वह, रात-भर वैलो को ढूढता रहा । आखिर थककर जव वह वापस लौटा, तो प्रभु के पास वैलो को वैठा देख वडा ही क्रोधित हो उठा । और

॥ १३३ ॥

वैलो की रस्सी को दुगुनी-तिगुनी करके उन्हे मारने को तैयार हुआ । उसी समय इन्द्र ने अवधिज्ञान द्वारा यह हाल जान लिया और शीघ्र ही वहा आकर ग्वाले को उचित दण्ड देकर रवाना किया । इसके पश्चात्, इन्द्र प्रभु से यह विनती करने लगा, स्वामिन् आपको बारह वर्ष तक, छद्मस्थ अवस्था मे अनेको उपसर्ग सहन करने पड़ेगे । मेरी ऐसी इच्छा है, कि मै आपकी सेवा मे रहकर, आपके उपसर्गो का निवारण करूं । आप मुझे साथ मे रहने की आज्ञा प्रदान करे । इस पर भगवान बोले—इन्द्र, ऐसा न तो कभी हुआ ही है, न होता ही है और न होगा ही, कि अरिहन्त (तीर्थङ्कर) देवेन्द्र, या असुरेन्द्र की सहायता से केवलज्ञान उत्पन्न करे । अथवा मोक्ष को पावे । किन्तु वे तो, अपने ही उत्थान, बल, वीर्य, पौरुष और पराक्रम से केवल-ज्ञान उत्पन्न करते और मोक्षगामी बनते है । भगवान के ऐसे उत्तर को सुनकर इन्द्र बडा ही विस्मित हो स्वस्थान को चला गया । स्वावलम्बन का कैसा सुन्दर और अद्भुत आदर्श पाठ, पाठको को, इस कथन से मिलता है । भगवान वहा से विहार कर, 'कोल्लाग' सन्निवेश मे पधारे । वहा बहुल नाम के ब्राह्मण के यहा परमान्न (खीर) का पारणा किया । तब, देवो ने पाच दिव्य वहा प्रकट किये—(१) आकाश मे ध्वजा का फैलाना, (२) गधोदक की वृष्टि, (३) दुन्दुभी का बजाना, (४) अहोदानं ! अहोदानं ! की घोषणा, (५) वसुधारा (धन) की वृष्टि । वहा से भगवान मोराकसन्निवेश को गये । वहा, दूइज्जवन्त नामक तपस्वी का एक आश्रम था । भगवान को आते देखकर वह तापस उनके सामने आया । तापस ने वर्षाकाल मे वहा पधारने के लिए आग्रह किया । भगवान शेष काल

॥ १३४ ॥

अन्यत्र विचरकर पुन. चातुर्मास के लिए वहा आ गये । परन्तु पशुओ के द्वारा झोपड़ी को तृण खा जाने, और भगवान के द्वारा उनका निवारण न करने से, उस तापस को अप्रीति उत्पन्न हो गई । अत पाच अभिग्रह, करके भगवान अस्थिक ग्राम मे चातुर्मास पर्यन्त स्थित रहे । वे पांच अभिग्रह इस प्रकार है—(१) अप्रीतिकर स्थान मे नही रहना, (२) गृहस्थो का विनय नही करना, (३) सदा प्रतिज्ञा धारणकर रहना, (४) छद्मस्थ दशा मे प्राय मोन से ध्यानस्थ रहना, (५) हाथ मे आहार करना ।

मूल—समणं भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं जाव चीवरधारी हुत्था । तेणं परं अचेले पाणिपडिग्गहिए,समणे भगवं महावीरे साइरेगाइं दुवालसवासाइं निच्चं वोसट्ठकाए, वियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तं जहा—दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्ख जोणिया वा अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ, खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

भावार्थ—दीक्षा के दिन से, भगवान् एक वर्ष और एक मास पर्यन्त वस्त्रधारी रहे । इसके पश्चात् वे वस्त्र रहित हो गये और हाथ मे ही भिक्षा ग्रहण करने लगे । भगवान् वारह वर्ष और कुछ काल अधिक (साढे छः मास तक) समय पर्यन्त अपने शरोर की सेवा सुश्रषा तथा देह पर के ममत्व को त्याग कर जो भी देवता, मनुप्य, एव तिर्यञ्च योनि सम्बन्धी अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आये, उन सभी को परम शान्ति के साथ

॥ १३५ ॥

क्रोध-रहित क्षमा और धैर्य पूर्वक, अदीन मन से सहन किया।

प्रासगिक वर्णन होने से, यहा, भगवान् पर आये हुए कतिपय मुख्य उपसर्गों का, सक्षेपत वर्णन किया जाता है —

अस्थिक ग्राम मे भगवान् पधारे और गाव के बाहर शूलपाणि यक्ष के यक्षायतन मे कायोत्सर्ग करके विराजे। वह यक्ष महान् क्रूर स्वभावी था। यक्ष के पुजारी ने भगवान् से कहा—आर्य ! यह यक्ष क्रूर है। अत आप यहा न ठहरे। परन्तु भगवान ने उसकी बात का कोई भी उत्तर न दिया। रात्रि मे, यक्ष ने प्रकट होकर अट्टहास किया। हाथी का रूप धारण करके भगवान् को आकाश मे उसने उछाल दिया। राक्षस का रूप धर कर, छुरी हाथ मे ले वह, भगवान् को डराने लगा। सर्प बनकर उसे डसा फिर भी भगवान अपने से जरा भी विचलित नही हुए। तब मस्तक, कान, नासिका, दात, नख, नेत्र और पीठ, इन सात स्थानो मे, अत्यन्त वेदना उसने उत्पन्न की। तब भी भगवान् टस-से-मस तक नही हुए अन्त मे पशु बल की हार हुई। वह यक्ष आपही शान्त हो गया। और ज्ञान से,भगवान को जानकर अपराध की क्षमा उसने मागी। सम्यक्त्व पाकर गीत गान नाटकादि से भक्ति-पूर्वक भगवान् की स्तुतिकर वह वहाँ से चलता बना। उसी दिन, पिछली रात्रि मे, दो घड़ी तक भगवान को निद्रा आ गई। उसमे उन्होने दस स्वप्न देखे। प्रात काल अष्टाग निमित्त वेत्ता "उत्पल" नामक नैमित्तिया, भगवान् के पास आकर लोगो के समक्ष, अपने निमित्त के बल से

॥ १३६ ॥

उन स्वप्नो का फल यूँ कहने लगा—स्वामिन,आपने प्रथम स्वप्न मे ताड प्रमाण पिशाच को मारा । इससे आप मोह कर्म का क्षय करेंगे, (२) श्वेत कोकिला देखने से, शुक्ल ध्यान ध्यावेगे, (३) विचित्र पाच वर्ण की कोकिलाओ का समूह देखा, इससे अनेक अर्थ वाली द्वादशांगी का निरूपण करेंगे, (४) पुष्पो की दो मालाएं देखने से, साधु धर्म और श्रावक धर्म का प्रकाश आप करेंगे, (५) गायों का समुदाय जो आपने देखा उससे चार प्रकार का सघ स्थापित करेंगे, (६) मान सरोवर को देखने से, आपकी देवता सेवा करेंगे, (७) समुद्र दर्शन से आप संसार समुद्र को पार करेंगे, (८) सूर्य को देखने से, केवल-ज्ञान की प्राप्ति आपको होगी । (९) आतो के जाल से मनुष्य क्षेत्र को लपेटा हुआ देखने से, आप परम प्रतापी होवेगे, (१०) मेरु पर्वत के शिखर पर चढने से, आप सिहासन पर बैठ, धर्मोपदेश देगे । निमित्तिये के ऐसे वचन सुनकर लोग प्रभु को वन्दना करके अपने-अपने घरो को चले गये । भगवान ने वहा चातुर्मास व्यतीत किया । पश्चात् अनेक क्षेत्रो मे विचरण करते-करते श्वेताम्बी नगरी की ओर जाते हुए, भगवान् कनकरवल नामक तापस के आश्रम के पासवाले चडकौशिक सर्प को प्रतिबोध देने के लिए वहा पधारे । सर्प के बिल के पास जाकर भगवान् ध्यान करके खडे होगये । चडकौशिक दृष्टि विष वाला एक भयकर सर्प था । उसने सूर्य की ओर देखकर, अपनी आखो के द्वारा भगवान् पर विष की ज्वाला फेकी । परन्तु भगवान् पर उसका कोई असर न हुआ । तब उसने उनके अगूठे को डस डाला । पर उसमे से सफेद और मीठा खून निकला । इससे उस सर्प को अत्यन्त आश्चर्य

॥ १३७ ॥

हुआ। वह वडे ही विचार मे पड गया। उसी समय, भगवान ने परम शान्त वाणी द्वारा उससे कहा, समझ समझ ! चडकौशिक ! समझ ! क्रोध करके ही तो तुम अपने साधु स्वरूप से इस अवस्था को प्राप्त हुए हो। अव और भी क्रोध करके, क्यो पाप वढा रहे हो। भगवान के इन शब्दो को ध्यानपूर्वक सुनने और विचार करने से, उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। तब तो भगवान् को प्रदक्षिणा करके वह कहने लगा, प्रभो ! आपने मेरा उद्धार कर दिया। पश्चात् वह अनशन करके विल के अन्दर की ओर मुख करके रहने लगा। उसके इस बदले हुए व्यवहार को देख लोग उसको दूध आदि से पूजने लगे। दूध आदि को सुगध से उसके शरीर पर चीटिया लग गई। जिससे उसे पीडा होने लगी। उस पीडा को समभाव से सहन करता हुआ वह अपने शरीर को त्याग देवलोक मे जा उत्पन्न हुआ। यूँ अनेको क्षेत्रो मे छोटे-वड अनेको उपसर्ग सहते हुए, भगवान अनार्य क्षेत्रो मे विशेप कर्मो की निर्जरा करने के उद्देश्य से पधारे। वहा अनेक कष्ट और उपसर्ग भगवान ने क्षमा भाव से सहे।

एक वार, पेढाल ग्राम के उद्यान मे, पोलास नामक देवालय मे प्रभु एक रात्रि की प्रतिज्ञा में रहे। उस समय इन्द्र ने प्रभु के धैर्य और क्षमा की प्रशसा की। जिसे सुनकर सगम नामक (इन्द्र का सामानिक) देव इन्द्र के वचन की प्रतीति न कर प्रभु को विचलित करने के लिए वहाँ आया। ओर एक रात्रि मे पूरे-पूरे बीस उपसर्ग उसने किये। वे इस प्रकार थे–(१) धूलि की वर्षा की, (२) वज्रमुखी चीटियो से शरीर को चूँटा,

(३) वज्रमुखी डास बनकर शरीर को काटा, (४) नौ घीमेलो से शरीर को काटा, (५) बिच्छुओं ने डंक मारे, (६) सर्पों ने डसा, (७) नौलियो ने नख और मुखो से विदारण किया, (८) चूहो ने काटा, (९) हाथी व हथिनी ने सूंड मे पकडकर आकाश मे फेंक दिया, (१०) दांत व पैरो से कुचला, (११) पिशाच का रूप धर कर डराया, (१२) व्याघ्र ने छलांग मारकर डराया, (१३) माता बनकर कहा–पुत्र ! किस वास्ते दुखी होता है। मेरे साथ चल सुखी करूंगी, (१४) कानो मे ताक्ष्ण मुखवाले पक्षियो के पिंजरे बांधे। जिन्होने भगवान् को काट-काटकर दुख दिया, (१५) चाण्डाल ने आकर दुर्वचनो से तर्जना की, (१६) दोनों पैरो के बीच आग लगाई, (१७) कठोर वायु चलाकर दुर्दान्त कष्ट पहुँचाया, (१८) गोलवायु से शरीर को चक्रवत घुमाया, (१९) लोहे का गोला भगवान के मस्तक पर गिराया, (२०) रात्रि रहते ही प्रभात बना दिया। उस समय कोई आकर कहने लगा, प्रभात हो गया है, विहार करो। अब क्यो ठहरे हुए हो। परन्तु प्रभु ने अवधि ज्ञान मे रात्रि को जान लिया। इसके बाद, देव ने अपनी ऋद्धि दिखाई और वर मांगने के लिए कहता हुआ बोला, कि बोलो स्वर्ग दूं, या देवांगना। यह सुनकर भी भगवान् विचलित नही हुए। उपरोक्त बीस उपसर्ग एक रात्रि मे करके उस देव ने ग्राम-ग्राम के आहार अशुद्ध कर दिया। चेला बनकर, लोगो से कहता फिरा, कि मेरा गुरु रात्रि मे चोरी करने आवेगा। इसलिए मै छिद्र देखता हूँ। इससे लोग भगवान् को ताडन करने लगे। तब भगवान ने अभिग्रह लिया, कि जब तक उपसर्ग निवृत्ति नही होगा, तब तक आहार ही न लूंगा।

संगम देव ने छ मास तक, उपसर्ग किये। आखिर थक कर भगवान को नमस्कार कर, वह स्वर्ग मे चला गया। इन्द्र ने उसे स्वर्ग से निकाल दिया। वह मेरु चूला पर जा रहा। भगवान ने छ मासी पारणा व्रजगाँव मे ग्वाले के घर मे खीर से किया। देवो ने उसकी महान महिमा गाई।

वारहवे चातुर्मास को चम्पा मे व्यतीत कर, भगवान् पाण्मासिक ग्राम के वाहर प्रतिज्ञा से स्थित हुए। उनके पास कोई ग्वाला अपने वेल छोडकर गाँव मे चला गया। पीछा आने पर, उसने प्रभु से पूछा कि मेरे वैल कहा है! प्रभु मौन रहे। इससे क्रुद्ध होकर उसने भगवान के कानो मे जोर से डूचने लगा दिए। प्रभु ने अपने त्रिपृष्ट के भव मे शैय्यापालक के कान मे, जो तपा, हुआ शीशा डलवाया था, यह उसी समय के उपार्जित कर्मो का इस भव मे उदय हुआ। वही शैयापालक इस जीवन मे ग्वाला हुआ और उसने भगवान के कानो मे डूचने लगाए। इसके वाद, प्रभु मध्यम अपापा नगरी मे सिद्धार्थ वणिक के घर, भिक्षाथ पधारे। वहा खरक वैद्य ने प्रभु को डूचने सहित जाना। तव उस वणिक ने वैद्य के साथ उद्यान मे जाकर सॅडासी से,वे डूचने निकलवाये। उस समय प्रभु को भारी वेदना हुई। भगवान ने उस वेदना को सही। यह उपसर्ग अन्तिम था। यूँ एक ग्वाला से ही उपसर्गो का प्रारम्भ हुआ था, और ग्वाला से ही उपसर्गो का अन्त भी। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट सभी तरह के उपसर्ग भगवान ने अत्यन्त दृढता के साथ सहे। साढे वारह वर्ष तक, इतने भयकर उपसर्गों के वीच भी प्रभु पर्वत के समान अडोल बने रहे। समस्त उपसर्गो को अदीन भाव से, क्रोध रहित,

क्षमा और धैर्य के साथ सहन करते रहे ।

मूल—तएणं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाए इरियासमिए, भासासमिए एसणासमिए, आयाणभंडमत्तनिक्खेवणसमिए, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिए, मणसमिए, वयसमिए, कायसमिए, मणगुत्ते, वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी अकोहे, अमाणे, अमाए, अलोभे, संते, पसंते, उवसंते परिनिव्वुडे, अणासवे, अममे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे, कंसपाई इव मुक्कतोए, संखे इव निरंजणे, जीवे इव अप्पडिहयगई, गगणमिवनिरालंवणे, वाऊव्व अप्पडिबद्धे, सारयसलिलं व सुद्धहियए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, कुम्मोइव गुत्तिंदिए, खग्गिविसाणं व एगजाए, विहग इव विप्पमुक्के, भारंडपक्खी इव अप्पमत्ते, कुंजरो इव सोंडीरे, वसभो इव जाय थामे सीहो इव दुद्धरिसे, मंदरो इव अप्पकंपे, सागरो इव गंभीरे, चंदो इव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए, जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधरा इव सव्वफासविसहे, सुहुयहुयासणो इव तेयसाजलंते

इमेसिं पयाणं दुन्नि संगहिणी गाहाओ, "कंसे, संखे, जीवे गगणे, वाउय सारय सलिले य। पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारंडे ॥१॥ कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सागरमक्खोभे। चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव हूयवेह ॥२॥ नत्थिणं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे, से य पडिबंधे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा-दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ सचित्ताचित्तमीसएसुदव्वेसु। खित्तओ गामे वा,नगरे वा अरन्ने वा,खित्तेवा, खलेवा, घरेवा, अंगणे वा, नहेवा। कालओ समए वा, आवलियाए वा, आणापाणुए वा, थोवे वा, खणे वा, लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरत्ते वा, पक्खे वा, मासे वा, उऊ वा, अयणे वा, संवच्छरे वा अण्णयरे वा, दीहकालसंजोए वा। भावओ-कोहे वा, माणे वा मायाए वा लोभे वा, भए वा, हासे वा,पिज्जे वा,दोसे वा,कलहे वा,अब्भक्खाणे वा, पेसुन्ने वा, परपरिवाए वा, अरहरई वा, मायामोसे वा जाव मिच्छादंसणसल्ले वा तस्सणं भगवंतस्स नो एवं भवइ।

भावार्थ—दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान् निम्नोक्त गुण युक्त अणगार हुए। वे इर्या (गमन) मे, भापण

॥१४२॥

मे, बयालीस दोष टालकर आहार ग्रहण करने मे और सयम के उपकरणो के रखने व उठाने मे, विष्टा, मूत्र, थूक, श्लेष्म और देह का मल इत्यादि का त्याग करने मे उत्तम प्रवृत्ति वाले अर्थात् पाच समिति से युक्त हुए (यद्यपि अन्न की दो समितिया, अर्थात् पात्रादि के अभाव और आहार-नीहार के अदर्शन से तीर्थङ्करो के सम्भव नही होती तदपि पाच समिति का नाम अखड बनाये रखने के हेतु से यहा पाचो का ग्रहण किया गया है।) भगवान् मन, वचन, और काया की सम्यक्प्रवृत्ति सहित हुए और मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति से बचते रहे। अर्थात् तीन गुप्तियो से गुप्त रहे। पाच इन्द्रियो के तेइस विषयो का निवारण करने के कारण गुप्तेन्द्रिय रहे, और नववाड सहित ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। क्रोध,मान,माया, और लोभ से रहित, आभ्यन्तर वृत्ति से शान्त, बहिर्वृत्ति से प्रशान्त और उभय वृत्तियो से उपशान्त, तथा सर्व प्रकार के संतापो से दूर वे रहे। आश्रवो से रहित, ममता से हीन, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहो से परे, सुवर्णादि ग्रन्थो से शून्यवत् तथा द्रव्य और भाव रूप मैल से निरे निर्लेप रहे। जैसे, कासी के पात्र मे जल का लेप नही लगता,वैसे ही भगवान् भी स्नेह के लेप से सदा कोसो दूर रहे। जैसे, शख पर कोई रग नही चढ पाता, वैसे ही भगवान भी सभी रागो से एक दम परे थे। जैसे जीव की गति,कही नही रुकती,वैसे भगवान् का विहार भी कही न रुक सका। जैसे आकाश निराधार है उसी प्रकार, भगवान् भी निरवलम्ब (आश्रय रहित) हो यत्र-तत्र विचरते रहे। भगवान् का हृदय शरद ऋतु के जल के समान निर्मल हुआ कमल के कीचड मे उत्पन्न होते हुए भी जल से

वह वढता है और दोनों से निरा निर्लिप्त रहकर, ऊपर ही की ओर, अधर में वह रहता है। वैसे ही, प्रभु भी ससार रूपी कीचड से उत्पन्न हुए भोगरूपी जल से वढ़े और अनुक्रम से दोनो से पृथक् वे रहे। भगवान् कछुए के समान गुप्तेन्द्रिय, गैंडे के सीग के समान एकाकी, पक्षी के समान विप्रमुक्त, भारंड पक्षी के समान अप्रमत्त, कुंजर के समान शूर-वीर, बैलो के समान उठाए हुए व्रत भार को उठाने मे समर्थ, सिह के समान परिपहादि से अजेय मेरु पर्वत के समान अचचल, समुद्र के समान गम्भीर,चन्द्रमा के समान निर्मल कान्तिमान् पृथ्वी के समान सभी दुखो को हंसते-हसते दृढता पूर्वक सहन करने वाले,और घी से सीची हुई अग्नि के समान, तेज से जाज्वल्यमान हुए। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-रूप से चार प्रकार के प्रतिवन्ध कहे गये है। इन चारों प्रकार के प्रतिवन्धो मे से किसी भी प्रकार का कोई भी प्रतिबन्ध भगवान् को नही था। द्रव्य की अपेक्षा से प्रतिबन्ध तीन तरह के होते है–(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। सचित्त द्रव्य, जंसे स्त्री, अचित्त द्रव्य, जैसे आभूपण, मिश्र द्रव्य, जंसे आभूपण युक्त स्त्री। भगवान् इन तीनो से रहित थे। क्षेत्र से ग्राम, नगर जगल खेत, खलिहान,घर, आगन, आकाश आदि प्रतिवन्ध रहित थे। काल से, समय,आवलिका,श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल स्तोक (सात उच्छ्वास तक का काल) क्षण (क्षण एक घडी का छठा भाग) लव (सात स्तोक-काल) मुहूर्त (४८ मिनिट), अहोरात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और वर्ष, तथा दूसरे भी युग पूर्व, अंग-पूर्व आदि लम्बे काल मे भी भगवान का प्रतिबंध न था। भाव से, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग,

॥ १४४ ॥

द्वेप, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या कलंक), पैशुन्य (चुगली), परनिन्दा, रति-अरति, कपट झूठ और मिथ्या-दर्शन-शल्य इत्यादि मे भी भगवान की प्रकृति का मेल नही मिलता था। तात्पय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव, इन चारो प्रकार के प्रतिवन्धो से भगवान सदा के लिए मुक्त थे।

मूल—सेणं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे गामे एग राइए नगरे पंच-राइए वासी चंदणसमाणकप्पे, समतिणमणिलेट्ठुकंचणे, समसुहदुक्खे, इहलोगपरलोग-अप्पडिवद्धे, जीवियमरणनिरवकंक्खे संसारपारगामीकम्मसत्तुनिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरइ।

भावार्थ—भगवान् वर्षा काल के चार मास को छोड़कर, ग्रीष्म और हेमन्त के आठ मास तक किसो भी ग्राम मे एक रात्रि और नगर मे पाच रात्रि से अधिक नही ठहरते हुए विचरते थे। कुठार से चन्दन वृक्ष को काटने पर भी चन्दन कुठार के मुख को सुगन्धित ही करता है, उसी प्रकार दुख दायक होने पर भी, उपकार करते हुए ही भगवान विचरणशील रहे। प्रभु फरशे द्वारा उनके शरीर को काटनेवाले, तथा चरणो पर चन्दन को लगाने वाले दोनो पर सदा समभाव रखते थे। भगवान् तृण एव मणि दोनो को मिट्टी के ढेले और सुवर्ण, सुख तथा दुख सभी को समदृष्टि ही से देखते थे। इस लोक और परलोक, जीवन और मरण दोनो से

॥ १४५ ॥

प्रभु निरपेक्ष थे। भगवान् ससार से पार होनेवाले थे। वे कर्म-रूपी शत्रुओ का नाश करने मे सदा पूरे-पूरे सतर्क ओर सावधान रहते थे। इस प्रकार के गुणो से युक्त हो भगवान् बारह वर्ष छ. महीने और पन्द्रह दिन तक, छद्मस्थ रूप मे विचरण करते रहे।

प्रसगवश, भगवान के तप का वर्णन भी यहां कर देना अप्रासगिक न जच पडेगा।

सगम उपसर्ग मे पाच दिन कम छ मासी पारणा १		छ मासी १	पारणा १
चौमासी ६	पारणे ६	तीनमासी २	पारणा २
अढाईमासो २	पारणे २	दोमासी ६	पारणे ६
डेढमासी २	पारणे २	एकमासी १२	पारणे १२
अर्धमासी ७२	पारणे ७२	छट्ठ (बेले) २२९	पारणे २२६

भद्रप्रतिज्ञा दो दिन की, महाभद्र प्रतिज्ञा चार दिन की, सर्वतोभद्र प्रतिज्ञा दस दिन की, ये तीन प्रतिज्ञाएँ लगातार वहन की। जिनके सोलह उपवास, तीन पारणे, बारह तेले और बारह पारणे यूँ पूरे ग्यारह वर्ष, छः महीने और पच्चीस दिन का भगवान् का तप हुआ। दीक्षा के तप के पहले कुल पारणे सहित तीन सौ पचास पारणे हुए। यूँ कुल मिलाकर, बारह वर्ष, छ मास और पन्द्रह दिन का छद्मस्थकाल हुआ।

मूल—तस्सणं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरित्तेणं

अणुत्तरेणं आलएणं विहारेणं अणुत्तरेणं वीरीएणं अणुत्तरेणं अज्जवेणं, अणुत्तरेणं मद्दवेणं, अणुत्तरेणं लाघवेणं, अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए गुत्तिए, अणुत्तराए तुट्ठीए, अणुत्तरेणं सच्चसंजम तव सुचरिय सोवचिय फलनिव्वाणग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालससंवच्छराइं विइक्कंताइं तेरसमस्स संवच्छरस्स अन्तरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दुच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्सणं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं पाइण गामिणीए छायाए पोरसीए अभिनिविट्ठाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उज्जुबालियाए नइए तीरे वेयावत्तस्स चेइयस्स अदूरसामन्ते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालापायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुय निसिज्जाय आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ।

भावार्थ—इस प्रकार अनुपम ज्ञान, अनुपम दर्शन, अनुपम चारित्र, अनुपम स्त्री-पशु-पंडग-रहित स्थान के सेवन, अनुपम विहार, अनुपम पराक्रम, अनुपम, सरलता, अनुपम निरभिमान, अनुपम लघुता, अनुपम क्षमा, अनुपम निर्लोभ वृत्ति, अनुपम मन वचन काया की गुप्ति, अनुपम सतोप, सत्य, सयम और तप के आचरण से पुष्ट वने हुए मुक्ति फल वाले रत्नत्रय रूप अनुपम निर्वाण मार्ग के आराधन से अपनी आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को पूरे वारह वर्ष व्यतीत हो गये। तेरहवे वर्ष के बीतते हुए ग्रीष्म ऋतु के दूसरे महीने के चौथे पक्ष मे वैशाख सुदी दसमी के दिन, पूर्व दिशा मे छाया के जाने पर प्रमाण प्राप्त, दिन के अन्तिम प्रहर के समाप्त होते हुए सुवृत नामक दिन को, विजय मुहूर्त मे जृम्भिक गाव नामक वस्ती के बाहर ऋजुवालुका नदी के किनारे व्यावृत नामक यक्षायतन से प्राय समीप, श्यामक नामक गाथापति के क्षेत्र मे साल वृक्ष के नीचे गोदोहिक नामक उत्कट आसन से आतापना लेते हुए चौविहार बेले की तपश्चर्या-युक्त, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर, शुक्लध्यान ध्याते हुए महावीर स्वामी को अनन्त अर्थ द्योतक, अनुत्तर (सर्व ज्ञान से अधिक) भीत इत्यादि व्याघात और आवरण हीन, क्षायिक अप्रतिपाती, सर्व द्रव्य पर्याय के ग्राहक होने से पूर्ण, ऐसे केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुए।

मूल—तएणं समणे भगवं महावीरे अरहा जाए जिणे केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी

॥ १४८ ॥

सदेवमणुयासुरस लोगस्स परियायं जाणइ पासइ सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणोमाणसियं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं। अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं मणवयणकायजोगे वट्टमाणाणं, सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्व-भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

भावार्थ–केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, अर्हत् अर्थात् आठ महाप्रातिहार्य सहित हुए राग-द्वेप रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करने से, जिन विजेता हुए, वे केवली, सर्वज्ञ, और सर्वदर्शी हो गये। देवता, मनुष्य, और असुरो के समस्त गुण-पर्यायो को वे जानने और देखने लगे। समस्त लोको के समस्त जीवो की भवान्तर से आगति, भवान्तर मे गति, वर्तमान आयुष्य की स्थिति, देवतादि भव से तिर्यञ्च या मनुष्य गति मे अवतार, देवता या नारकी मे जन्म, सभी जीवो के तर्क, मन, मनोगत भाव खाये हुए पदार्थ, किये हुए कर्म, सेवन किये हुए भोगादि, प्रकट और गुप्त कर्म सभी को जाननेवाले वे हो गये। वे अर्हन त्रिलोक के ज्ञाता हुए, अतएव उनसे कुछ भी छिपा हुआ नही है। अथवा करोडो देवो से सेवित होने के कारण एकान्त के भागी वे नही होते। यूँ समस्त लोको के सर्व जीवो के उस काल के, मन, वचन और काया के यागो मे रहे हुए सभी भावो को जानते और देखते हुए, प्रभु विचरने लगे।

सूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठिय गामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए चंपं च पिट्ठी चंपं च नीसाए तओ अन्तरावासे वासावासं उवागए वेसालिंनगरिं वाणियगामं च नीसाए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए रायगिहं नगरिं नालंदं च वाहिरियं नीसाए चउद्दस अन्तरावासे वासावासं उवागए, छमिहिंलियाए, दो भद्दियाए, एगं आलंभियाए, एगं सावत्थीए, एगं पणियभूमीए, एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अन्तरावासं वासावासं उवागए।

भावार्थ—उस काल, श्रमण भगवान महावोर स्वामी ने दीक्षा लेने पश्चात् प्रथम चातुर्मास, अस्थिक ग्राम के बहार शूलपाणि यक्ष के यक्षायतन मे, तीन चातुर्मास चम्पा और पृष्ठ चम्पा नगरी मे, विशाला नगरी और वाणिया ग्राम मे बारह, राजगृहनगर के बारह, नालदा पाडे में चौदह, मिथला नगरी मे छ, भद्रिका नगरी मे दो, आलम्बिका और श्रीवस्ती नगरियो मे एक-एक, अनार्यभूमि में एक और मध्यम पावापुरी के हस्तिपाल राजा की दाण सभा मे भगवान ने अन्तिम चातुर्मास किया। इस प्रकार छद्मस्थ, तथा केवली

॥ १५० ॥

अवस्थाओ मे भगवान के कुल बयालीस चातुर्मास किये ।

मूल—तत्थणं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अन्तरावासं वासावासं उवागए तस्सणं अन्तरावासस्स जे से वासाणं चउत्थेमासे सत्तमे पक्खे कत्तिय बहुले तस्सणं कत्तियबहुलस्स पण्णरस्सी पक्खेणं जा सा चरमा रयणी तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते, समुज्जाए छिन्नजाइजरामरवन्धणे, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, अन्तगडे, परिनिव्वुडे सव्वदुक्खपहीणे चन्दे नामं से दोच्चे संवच्छरे, पीइवद्धणेमासे, नंदिवद्धणे पक्खे, अग्गिवेसे नामं सा रयणी निरत्तित्ति पवुच्चइ अच्चे लवे मुहूत्त पाणू, थोवे सिद्धे, नागे करणे, सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते, साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खपहीणे ।

भावार्थ—भगवान ने जब मध्यम पावापुरी मे हस्तिपाल राजा की दाण सभा मे अन्तिम चातुर्मास किया । उसके चौथे महीने सातवे पक्ष, कार्तिक कृष्ण पक्ष को, पन्द्रहवी रात्रि (अमावस्या) के दिन, भगवान कायस्थिति और भवस्थिति मे काल धर्म को पाकर ससार से पार हो गये । संसार मे पुन न आवे, इस तरह

ऊर्ध्व दशा, मोक्ष मे पधारे। वे जन्म जरा और मरण के बन्धनो को छेदकर, सर्व कार्य मे सिद्ध, तत्वो को जाननेवाले बुद्ध. सर्व कार्यों से मुक्त, सर्व दुखान्तक, सभी सतापो से रहित होने के कारण अनन्त सुख के भोक्ता तथा शारीरिक एव मानसिक सभी प्रकार के दुखो से रहित हो गये। सैद्धान्तिक रूप से भगवान के निर्वाण वर्ष, मास, तिथि आदि के नाम इस प्रकार है—जिस वर्ष प्रभु-निर्वाण में पधारे, वह चन्द्र नाम का दूसरा संवत्सर (वर्ष), प्रीति वर्धक नाम का मास, नन्दी-वर्धन नामक पक्ष, और अग्निवेश वा उपसम नामक दिन था। उस रात्रि का नाम देवानदा वा निरति था। वह अर्चनामक लव, मुहूर्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थ सिद्ध नामक मुहूर्त था। और, स्वाति नक्षत्र के साथ, उस काल मे चन्द्रमा का योग था। ऐसे परम पावन समय पर प्रभु सर्व दुखो से रहित हो निर्वाण-पद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हुए।

मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खपहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि हुत्था।

भावार्थ—जिस रात्रि मे, श्रमण भगवान महावीर स्वामी निर्वाण मे पधारे, यावत् सर्व दुख मुक्त हुए, वह रात्रि अनेको देवो व देवियो के आवागमन से प्रकाशवाली हो गई थी।

मूल—जं रयणिं च समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे साणं

रयणी वहूहिं देवेहिं देवीहि य ओवयमाणेहिं उप्पयमाणेहि य उप्पिजलगमाणभूया कहकडाभूया यावि हुत्था ।

भावार्थ–जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सर्व दुखो से मुक्त होकर निर्वाण मे पधारे, वह रात्रि अनेको देवो और देवियो के आवागमन से व्याप्त होने के कारण, कोलाहल से अव्यक्त शब्दवाली हो गई थी ।

मूल–जं रयणिं च समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खपहीणे तं रयणि चन्नंजिट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अन्तेवासिस्स नायए पिज्जवन्धणे वुच्छिन्ने अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाण दंसणे समुप्पन्ने ।

भावार्थ–जिस रात्रि मे, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सर्व दुखो से रहित हो निर्वाण मे पधारे, उस रात्रि म भगवान् के ज्येष्ठ, अन्तेवासी गौतम गौत्रीय, इन्द्रभूति अणगार को ज्ञातकुल मे उत्पन्न श्री महावीर स्वामी सम्बन्धी स्नेह-बन्धन के टूट जाने पर, अनन्त और अनुपम यावत् उत्तम, केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुए ।

॥ १५३ ॥

कार्तिकी अमावस्या के दिन श्रमण भगवान महावीर ने, अपना निर्वाण-काल समीप आया जान अपने प्रतिप्रगाढ स्नेह रखनेवाले, गौतम स्वामी को, समीप ही मे देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया। और उसी रात्रि मे, भगवान् निर्वाण को पधार गये। भगवान् के निर्वाण पधारने का वृत्तान्त सुन, गौतम स्वामी पर मानो वज्र टूट पडा। वे क्षण-भर के लिए स्तव्ध रहकर बोलने लगे—हे स्वामिन्, तीन जगत् के सूर्य, आप तो अस्त हो गये, परन्तु अव पाखडी तारे देदीप्यमान होगे, और मिथ्यात्व-रूप अंधकार फैल जावेगा। यूँ कहकर वे विचार करने लगे, हा वीर! आपने यह क्या किया! जिस समय अपने वालको को दूर से बुलाना चाहिए था! उस समय आपने मुझको दूर किया! क्या मै इतना वेसमझ था वालक की तरह पल्ला पकडकर आपको मोक्ष नही जाने देता, अथवा क्या, मै आपके केवल-ज्ञान मे कोई हिस्सा वँटा लेता, अथवा क्या, आपमे मेरा कोई कृत्रिम स्नेह था! अथवा मोक्ष मे क्या कोई बाधा आ पडती, जिससे आप मुझे साथ लेकर नही गये! हे वीर! हे स्वामिन्!! आप मुझे कैसे अकेला छोड गये! अव मै किससे सन्देह और प्रश्न पूछूगा! यूँ वे बोलते रहे। सहसा, उन्हे भान हुआ, कि अहो महावीर स्वामी तो वीतराग है। नि स्नेही है, धिक्कार है मुझको, जो श्रुत ज्ञान से भी मैने, मोह का माहात्म्य नही जाना। निर्मोह मे मोह कैसा! न कोई मेरा है, और न मै ही किसी का कोई हूँ। यह आत्म स्वय ही शाश्वत, तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप है। अन्य सर्व भाव अनित्य है। इस एक पक्षीय स्नेह को धिक्कार है! अल मोहेन! इस प्रकार स्नेह का

वन्धन टूट जाने पर, श्रीगौतम स्वामी को अनन्त एव अनुपम श्रेष्ठ केवल-ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट हो आये। देवो ने आकर महोत्सव किया।

मूल—जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणि च णं नव मल्लइ नव लेच्छइ कासीकोसलगा अट्ठारस्स वि गणरायाणो अमावासाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठविंसु गए से भावुज्जोयं करिस्सामो।

भावार्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण को पधारे, उस रात्रि को मल्लकी गोत्र वाले काशी देश के नौ भूपतियो और लिच्छवी वश के कौशल देशी नौ राजाओ ने यूँ कुल अठारह गण नायक राजाओ ने ससार-समुद्र से पार करने वाला, चतुर्विध आहार त्याग-रूप पौपधोपवास किया, और ज्ञान-रूप-भान प्रकाश के कर्ता प्रभु निर्वाण पधार गये, अत द्रव्य उद्योत करेगे। यूँ विचारकर उन्होने द्वितीय वर्ष रोशनी लगाई तभी से दीपमालिका पर्व प्रचलित हुआ है।

मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं खुद्दाए भासरासी नाम महागहे दो वास सहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स

जम्मनक्खत्तं संकंते ।

भावार्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सर्व दुःखो से मुक्त होकर निर्वाण को पधारे, उसी रात्रि मे क्रूर-क्रूर स्वभाव वाला भस्म नामी महा ग्रह, दो हजार वर्ष के लिये श्रमण भगवान् महावीर के नक्षत्र (उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र) मे सक्रान्त हुआ ।

मूल—जप्पभिइं च णं से खुद्दाए भासरासी महग्गहे दो वाससहस्सा ठुई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते, तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथी य नो उदिए उदिए पूआसक्कारे पवत्तइ । जया णं से खुद्दाए जाव जम्मनक्खत्ताओ विइक्कंते भवस्सिइ तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए उदिए पूआ सक्कारे भविस्सइ ।

भावार्थ—जव से, दो हजार वर्ष की स्थिति वाला क्रूर स्वभावी भस्मग्रह, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जन्म-नक्षत्र मे संक्रान्त हुआ, तभी से भगवान् के शासन मे, साधु-साध्वियो का उत्तरोत्तर वृद्धिगत सम्मान, पूजा व सत्कार्य के राज मार्ग मे रोड़े अटकेगे । अव तो, जव कभी भी वह क्रूर भस्म ग्रह भगवान की जन्म राशि से दूर हो पावेगा, तभी साधु, साध्वियो को उत्तरोत्तर पूजा होगी, सत्कार सम्मान वढेगा ।

॥ १५६ ॥

उपरोक्त बात को पहले ही से सोच विचार कर, इन्द्र ने भगवान् से उनके निर्वाण मे पधारने के पूर्व ही प्रार्थना की थी, हे प्रभो ! आप अपने आयुष्य को थोडा सा और बढाले, ताकि आपकी पावन दृष्टि से, भस्मग्रह का फल निरा निर्बल हो जावेगा और शासन की कोई हानि भी न हो पावेगी। इस पर भगवान ने उत्तर दिया, हे इन्द्र ! जो भी तीर्थङ्कर अनन्त बलवीर्यवाले होते है, फिर भी आयु का न तो एक क्षण ही वे अधिक कर सकते है और न एक क्षण कम ही।

मूल–जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं कुंथु अणुद्धरी नामं सपुप्पन्ना जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य न चक्खुफासं हव्वमागच्छंति जा अठ्ठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं य निग्गंथीणं य चक्खुपासं हव्वमागच्छंति।

भावार्थ–जिस रात्रि मे, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण को पधारे, उस रात्रि मे दूर न हो सकनेवाले अनेको सूक्ष्म कुन्थुए उत्पन्न हुए। वे कुन्थुए स्थिर थे। अतएव अचल होने से, छद्मस्थ साधु साध्वियो की नजरो मे शीघ्र नही आ सकते थे। जो कुन्थुए अस्थिर और चलते-फिरते रहे, वे छद्मस्थ साधु साध्वियो के शीघ्र देखने मे आ जाते थे।

मूल—जं पासित्ता वहूहिं निग्गंथेहिं निग्गथीहिं य भत्ताइं पच्चक्खायाइं, से किमाहु भंते ! अज्जपभिइं संजमे दुराराहाए भविस्सइ ।

भावार्थ—ऐसे सूक्ष्म दुरुद्धर कुन्थुओ को देखकर अनेको साधुओ तथा साध्वियो ने, आहार-पानी का सर्वथा त्याग कर दिया । यह देखकर, शिष्य ने गुरु से पूछा—भगवन् ! आहार-पानी के त्यागकर देने का कारण क्या है ? इस पर गुरु ने फर्माया, कि आज से सयम का पालन दुष्कर हो जावेगा, पृथ्वी जोवाकुल हो जावेगी और क्या सयम-निर्वाह के लायक, क्षेत्र, वहुत ही कम रह जावेगे ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामुक्खाओ चउद्दस समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया हुत्था ।

भावार्थ—उस काल श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के, इन्द्रभूति, आदि चौदह हजार साधुओ की उत्कृष्ट साधु-सम्पदा हुई ।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचन्दणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था ।

भावार्थ—श्रमण भगवान महावीर के, चन्दनवाला आदि छतीस हजार साध्वियो की उत्कृष्ट साध्वी-सम्पदा हुई ।

मूल—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स संख सयगपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सीओ अउणट्ठिंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था । समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसारेवई पामोक्खाणं समणोवासियाणं तिन्निसयसाहस्सीओ अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था ।

भावार्थ—श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शख, शतक आदि श्रावको की एक लाख उनसठ हजार उत्कृष्ट श्रावक-सम्पदा थी । और सुलसा रेवती इत्यादि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओ की उत्कृष्ट श्राविका-सम्पत्ति थी ।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स तिन्निसया चउद्दस पुव्वीणं अजिजाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणोविव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दस पुव्वि संपया हुत्था ।

भावार्थ—भगवान के, जिन नही परन्तु जिन ही के समान, सर्व अक्षरो की सयोजना जानने वाले जिनके समान सत्यवादी तीन सौ चौदह पूर्वधारी मुनिराजो की सम्पदा हुई।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स तेरससया ओहिनाणीणं अइसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया हुत्था।

भावार्थ—वैसे ही भगवान के आमर्श औपधि आदि लब्धिवाले तेरहसौ अवधि-ज्ञानियो को सपदा थी।

मूल—समणस्सणं भगवओ महावीरस्स सत्तसया केवलनाणीणं संभिन्नवरनाणदंसण-धराणं उक्कोसिया केवलनाणीणं संपया हुत्था।

भावार्थ—भगवान के परिपूर्ण श्रेष्ठ ज्ञानी और दर्शन के धारण करनेवाले सातसौ केवल ज्ञानियो की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्तसया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विअसंपया हुत्था।

भावार्थ—भगवान के देव तो नही, परन्तु देवो ही के समान ऋद्धि विकुर्वने मे समर्थ सात सौ वक्रिय लब्धि-धारी मुनिराजों की महान सम्पदा थी।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स पंच सया विउलमइणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु संनीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमईणं संपया हुत्था ।

भावार्थ—भगवान महावीर के ढाई द्वीप और दो समुद्रो मे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय जो पर्याप्त है, उनके मनोगत भावो को जानने वाले, विपुल मति, मनःपर्यव-ज्ञानियो की उत्कृष्ट पाच सौ की सम्पदा थी ।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया हुत्था ।

भावार्थ—श्रमण भगवान के देवता, मनुष्य एव असुरो की सभा मे पराभव नही पानेवाले वादियो की उत्कृष्ट चार सौ की सम्पदा थी ।

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासी सयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं ।

भावार्थ—उन्ही भगवान के सात सौ शिष्य और चौदह सौ साध्विया सिद्ध हुई जो सर्व दुःखो से मुक्त हुई ।

॥ १६१ ॥

मूल—समणस्सणं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणं ठिइ-कल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया हुत्था ।

भावार्थ—श्रमण भगवान के आगामी मनुष्य-गति मे मोक्ष रूप कल्याण वाले, देव अवस्था मे भी प्राय. वीतरागी और आगामी भव में सिद्ध होने वाले, ऐसे आठ सौ अनुत्तर विमान मे उत्पन्न होने वाले मुनिराजो की सम्पदा थी ।

मूल—समणस्सणं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतगडभूमि हुत्था तं जहा—जुगंतकड-भूमि य परियायंतकडभूमी य जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमि चउवासपरि-याए अंतमकासी ।

भावार्थ—भगवान के दो प्रकार की अन्तकृत भूमि हुई । एक तो (१) युगान्तर भूमि और दूसरी (२) पर्याय अन्तकृत भूमि । युग पुरुष के अन्त करनेवाली भूमि को युगान्त-कृत भूमि कहते है । श्री महावीर स्वामी के मोक्ष को प्राप्त होने के पश्चात् भगवान के पद पर सुशोभित सुधर्मस्वामी मोक्ष मे गये । उनके बाद, जम्बूस्वामी मोक्ष मे गये । ये तीन पाट परम्परा से मोक्ष मे गये । जम्बूस्वामी के बाद कोई भी पट्टधारी

मोक्ष मे नही गया। यह युगान्त-कृत भूमि हुई। तीर्थङ्कर के केवलज्ञान की उत्पत्ति से लेकर, जितने भी समय से मोक्ष मार्ग शुरू हो, उसे पर्यायान्त कृत भूमि कहते है। श्री महावीर स्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, इसके चार वर्ष बाद मुक्ति मार्ग शुरू हुआ। यह दूसरी पर्यायान्त कृत भूमि हुई।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता बायालीसं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहूविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए, एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने, पणपन्नं अज्झयणाइं, कल्लाणफलविवागाइं, पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए विइक्कंते समुज्जाए, छिन्नजाइजरा-

मरणबंधणे, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते अंतगडे, परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

भावार्थ–उस काल तक श्रमण भगवान महावीर स्वामी पूरे तीस वर्ष गृहस्थावस्था मे, कुछ समय अधिक बारह वर्ष छद्मस्थ पर्यायी, कुछ कम तीस वर्ष तक केवलिपर्यायी, (पिछले बयालीस वर्ष तक चारित्रपर्यायी) रहते हुए कुल बहत्तर वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य पालकर, वेदनीय, आयु नाम और गोत्र इन चार अघाति कर्मों के क्षय हो जाने पर, इस अवसर्पिणी काल के दुखम-सुखम नामक चौथे आरे का अधिकाश भाग बीतते-बीतते, अर्थात् तीन वर्ष और साढे आठ मास बाकी रहे तब, मध्यम पावापुरी के हस्तिपाल राजा के जीर्ण दाण-मडप मे, अकेले असग रूप से चौविहार बेला करके, स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होते समय चार घडी रात्रि शेष रहते, पद्मासन से बैठे हुए पचपन अध्ययन कल्याण फल के, पचपन अध्ययन पाप फल के, छत्तीस अध्ययन अपृष्ट व्याकरण के (बिना ही प्रश्न के उत्तर कहकर), प्रधान अध्ययन मे मरुदेवी के अधिकार को कहते हुए भगवान निर्वाण मे पधारे। अर्थात जन्म, जरा और मरण के बन्धनो को छेद वे सिद्ध, बुद्ध बन सर्व कर्मो को अन्त करते हुए कर्मो से मुक्त हुए। यूं सर्व संताप से रहित होकर उन्होने शाश्वत सुख को प्राप्त किया। ॥ १६४ ॥

मूल–समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स नववाससयाइं विइ-क्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ । वायणंतरे पुण

अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इति दीसई ।

भावार्थ–श्रमण भगवान महावीर स्वामी निर्वाण पधार जाने के नौ सौ अस्सी वर्ष उपरान्त सूत्र सिद्धान्त, देवर्द्धि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता मे लिपिबद्ध हुए । कोई-कोई इसको नौ सौ तिरानवे वर्ष बाद भी होना मानते है ।

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं पासेणं अरहा पुरिसादाणीए पंच विसाहे होत्था तं जहा–विसाहाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, विसाहाहिं जाए, विसाहाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे, विसाहाहिं परिनिव्वुडे ।

भावार्थ–उस काल, पुरुषादानीय (पुरुषों मे प्रधान) अर्हन श्री पार्श्वनाथ प्रभु के पाच कल्याणक विशाखा नक्षत्र मे हुए । प्रभु विशाखा नक्षत्र मे, देवलोक से चव कर वामादेवी माता के गर्भ मे पधारे । विशाखा नक्षत्र मे प्रभु का जन्म हुआ । उसी विशाखा नक्षत्र में प्रभु ने मुंडित होकर गृहस्थावस्था को त्याग, दीक्षा अंगीकार की, और उसी विशाखा नक्षत्र मे प्रभु को अनन्त, अनुपम, अव्याघात, अनावरण, समग्र, परिपूर्ण,

तथा श्रेष्ठ केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन की प्राप्ति हुई। और अन्त मे उसी विशाखा नक्षत्र मे, प्रभु निर्वाण मे पधारे।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्त बहुले तस्सणं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पाणयाओ कप्पाओ वीसं-सागरोवमट्ठिइआओ अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीन-यरीए आससेणस्स रण्णो वामाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहि नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते।

भावार्थ—उस काल, पुरुष-प्रधान, श्री पार्श्वनाथ प्रभु इस ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास प्रथम पक्ष, चैत्र कृष्ण चतुर्थी (चैतवदी ४) के दिन, बीस सागरोपम की स्थितिवाले प्राणत नामक दसवे देवलोक से, अन्तर रहित चव कर इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र की वाणारसी नगरी मे, अश्वसेन राजा की वामादेवी नामक रानी की कोख से, देव-सम्बन्धी आहार, भव, शरीर को, त्याग मध्य रात्रि के समय जब विशाखा नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग हो रहा था, गर्भ रूप मे पधारे।

मूल—पासेणं अरहा पुरिसदाणीए तिण्णाणोवगए आवि हुत्था तं जहा—चइस्सामित्ति

जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसण विहाणेणं सव्वं जाव नियगं गिहं अणुपविट्ठा जाव सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ।

भावार्थ—पुरुष-प्रधान प्रभु पार्श्वनाथ स्वामी को गर्भ मे भी तीन ज्ञान थे । वे यह बात भली भाति जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्युत हो जाऊगा, चवन का काल अति सूक्ष्म होने से चवन को प्राप्त होते नही जानते । हा चवन होने के पश्चात यह जानते है कि मेरा चवन हुआ है । इसके पश्चात चौदह स्वप्नों का देखना, राजा को कहना, प्रभात मे राजा का स्वप्न-लक्षण पाठको से पूछना, फल सुनना आदि सब बाते श्री महावीर स्वामी के तुल्य ही समझना चाहिये । यावत् वामादेवी अपने भवन पर आई और सुखपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुलस्स दसमी पक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइं-दियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गारोग्गं दारयं पयाया । ॥ १६७ ॥

भावार्थ—उस काल, नौ महीने और साढे सात दिन के पूर्ण होने पर, शीतकाल के दूसरे महीने के तीसरे पक्ष मे अर्थात पौष कृष्ण दशमी के दिन, अर्धरात्रि के समय, विशाखा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर परम निरोग वामादेवी ने आरोग्य सम्पन्न अर्हन पुरुष-प्रधान प्रभु पार्श्वनाथ जी स्वामी को जन्म दिया।

मूलं—जं रयणिं च णं पासे अरहा पुरिसादाणीए जाए, तं रयणि च णं बहूहिं देवेहिं देवीहिं य जाव उप्पिंम जलगभूआ कहकहगभूआ यावि हुत्था सेसं तहेव, नवरं पासाभिलावेणं भणियव्वं जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं।

भावार्थ—जिस रात्रि मे वामादेवी ने पुरुष प्रधान भगवान पार्श्वनाथ को जन्म दिया, उस रात्रि मे अनेकों देव-देवियो के मनुष्य लोक मे आवागमन करने से, अंधेरी रात्रि भी चमकीली हो गई। और उन देव-देवियो के हर्ष भर अव्यक्त, और हास्यमय शब्द से कोलाहल पूर्ण हो गई। छप्पन दिक्कुमारियो द्वारा सूति कर्म करके, जन्म-महोत्सव मनाना, इत्यादि वृत्तान्त भगवान महावीर स्वामी के समान ही यहा भी समझना चाहिए। इस बालक का नाम पार्श्वकुमार हो। प्रभु जब गर्भ मे पधारे थे, तब वामादेवी माता ने अंधेरी रात्रि मे अपनी शैय्या के पास से जाता हुआ एक काला सर्प देखा। और शैय्या से नीचे लटकते हुए अश्वसेन राजा के हाथ को ऊपर उठाया। उस समय राजा ने जाना, कि ऐसी अंधेरी रात्रि मे रानी ने सर्प देख लिया, यह गर्भ ही

का प्रभाव है। इससे जव गर्भ जात वालक उत्पन्न होगा तव उसका नाम "पार्श्व" रक्खा जावेगा। तदनुसार प्रभु का पावन जन्म हो जाने पर उनका नाम पार्श्वकुमार ही रक्खा गया। पार्श्वकुमार कल्पवृक्ष के अकुर के समान वढने लगे। नौ हाथ ऊंचे शरीर वाले, मेरु जैसे धीर तथा नीलकलम के समान श्याम शरीरी प्रभु यौवनावस्था को प्राप्त हुए। कुशलस्थल नगर के स्वामी राजा प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती से इनका विवाह हुआ। एकवार जव गवाक्ष मे वैठे हुए पार्श्वकुमार ने नगर के लोगो को पक्वान्नादि भोजन थालो मे रख नगर से वाहर जाते हुए देखा, तव सेवक से उन्होने कुछ पूछा। उत्तर मे सेवक वोला—स्वामिन्! नगर के वाहर कमठ नामक पंचाग्नि साधक एक महा तापस आया है, जिसे नमन करने को ये सव जा रहे हैं। उसी समय वामादेवी ने भी तापस को देखने की इच्छा प्रकट की। पार्श्वकुमार भी माता के साथ हाथी पर हो लिये। वहा पहुँचने पर भगवान ने अपने अवधिज्ञान द्वारा यह जान लिया कि जलते हुए काष्ठ मे नाग और नागिनी भी जल रही है। करुणासागर प्रभु ने तापस से कहा—अरे, यह अज्ञानमय तप कैसा और क्यो? देखो, तुम्हारे जलाये हुए काष्ठ मे एक नाग और नागिनी भी जल रही है। यूँ कह उन्होने जलते काष्ठ को वाहर निकाला, और यत्न-पूर्वक कुल्हाडे से उसे चीरकर जलते हुए नाग और नागिनी को उसमे से वाहर निकाले। यह देख कर सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये। प्रभु ने झुलसे हुए नाग और नागिनी को नवकार मत्र सुनाया। जिसके प्रभाव से, वे धरणेन्द्र और पद्मावती के रूप मे अवतरे। प्रभु अपने स्थान पर आये। प्रभु के इस

कार्य मे, वह तापस मन ही मन अत्यन्त लज्जित हो गया, और भी घोरतर तपकर मेघ माली के रूप मे एक देव हुआ।

मूल—पासेण अरहा पुरिसादाणीए दक्खे, दक्खपइन्ने, पडिरूवे, अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी—जय जय नन्दा जय जय भद्दा जाव जय जय सद्दं पउजंति।

भावार्थ—पुरुपादानीय, अर्हन पार्श्वनाथ स्वामी बडे ही दक्ष, प्रतिज्ञा-पालक और रूप सम्पन्न थे। ससार मे रहते हुए भी वे संसार से कमल के समान अलिप्त सरल स्वभावी, और विनयी थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थ मे रहे। लोकान्तिक देवो ने, अपने जीत कल्पव्यवहारानुसार आकर प्रभु से दीक्षा अगीकार करने के लिए इस प्रकार विनती की, कि स्वामिन्! आप जयवन्त हो, वृद्धि को प्राप्त हो, हे क्षत्रिय वर वृषभ, हे लोकनाथ, हे प्रभो! आप प्रतिबोध पावे और जगहितकारी धर्म तीर्थ के प्रवर्तक बने, आपकी जय हो। त्रिजय आपकी सदा चिरसगिनी हो। गृहस्थावास से विरक्त हो। पार्श्वनाथ स्वामी अवधिज्ञान द्वारा अपने दीक्षा काल को जानते थे। तथापि लोकान्तिक देवो से इस बात को सुन, और वर्षी-दान देकर दीक्षा लेने को वे तैयार होगये।

मूल–पुव्विं पि णं पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स माणुसग्गाओ गिहत्थधम्मओ अणुत्तरे आहोइए तं चेव सव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुले तस्स णं पोसबहुलस्स इक्कारसी दिवसे णं पुव्वण्हकालसमयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव सव्वं नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ २ त्ता सीयाओ पच्चोरुहइ २ त्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

भावार्थ–पुरुष-प्रधान, अर्हन् श्री पार्श्वनाथ प्रभु को मनुष्योचित गृहस्थ धर्म से अनुपम उपयोग रूप अवधिज्ञान प्राप्त था । उसके द्वारा अपना दीक्षा का अवसर सन्निकट जानकर सोना, वगैरह धन का सर्वथा त्यागकर गोत्रीय जनो को विपुल धन द्वारा प्रसन्नकर शीतकाल के दूसरे मास मे तीसरे पक्ष मे अर्थात् पौप-

कृष्ण ग्यारस के दिन प्रथम प्रहर में विशाला नामक पालकी में बैठकर देव मनुष्य, एव असुरो की परिपदा के साथ (इत्यादि विशेपण पूर्व वर्णित वीर अधिकारवत्) विशेप वाणारसी नगरी के मध्यम से निकल जहा आश्रमपद नामक उद्यान था, वहां आकर अशोक वृक्ष के नीचे पालकी रखवाई। पालकी से उतरकर, स्वय ही प्रभु ने अपने सम्पूर्ण आभूपण एवं माला का परित्याग कर दिया। और अपने हो हाथो पच मुष्टि लोच भी उन्होने किया। जल रहित अठ्ठम (तेला) करके विशाखा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर एक देव दूष्य को लेकर तोनसौ पुरुपो के साथ मु डित हो गृहस्थी से नेह-नाता तोड प्रभु ने दीक्षा अगीकार की।

मूल—पासेणं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए, चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तं जहा—दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खई अहियासेहि।

भावार्थ—पुरुपादानी अर्हन प्रभु पार्श्वनाथ ने पूरे तिरासी दिन तक लगातार शरीर की सुश्रूपा को त्याग उस पर से मोह-ममता दूर कर, देव मनुष्य, एव तिर्यञ्चो के द्वारा किये गये अनुकूल-प्रतिकूल सभी प्राप्त उपसर्गो को, शरीर तथा मन को दृढ और स्थिर बना, क्षमापूर्वक अदोन मन से सहन किया।

प्रभु के दीक्षा अगीकार कर लेने के पश्चात् एकदिन, किसी तपस्वो के आश्रम में वट वृक्ष के नीचे,

प्रतिज्ञा अगीकार करके वे रहे। उसी समय मेघमाली नाम का देव वहा आया और प्रभु को उपसर्ग दिया उसने पहले तो वैताल का रूप बना कर घोर अट्टहास द्वारा प्रभु को डराना चाहा। तदनन्तर, सिह, विच्छु, सर्प, आदि के द्वारा अनेको उपसर्ग किये। परन्तु प्रभु ध्यान से जरा भी चल-विचल न हुए। तव वह अत्यन्त क्रोधातुर हो मेघ घटा बनकर काली रात्रि के समान श्याम-मेघ माला से आकाश को ढक प्रलय काल सदृश, मूसलधार मेघ वर्षाने लगा। ब्रह्माण्ड के चूर-चूर हो पडने जैसी घोर गर्जना हुई। यमराज की जिह्वा जैसी लपलपाती हुई विजलिया कौधने लगी। ध्यान मे खडे हुए प्रभु की नासिका तक जल आ गया। तव भी, भगवान ज्यो के त्यो खडे रहे। यह देख धरणेन्द्र का आसन कपित हो उठा। उसने अवधिज्ञान से भगवान को उपसर्ग जानकर, पद्मावती सहित वहा आ, अपने फणो द्वारा, प्रभु पर छत्र कर दिया। पश्चात् धरणेन्द्र ने मेघमाली को जोरो से धमकाया। उनके क्रोध भरे वचन सुन, मेघमाली भय के मारे तिलमिला उठा। और मेघमाला को समेटकर भगवान् के चरणो मे जा गिरा। अपने अपराध के लिए उसने वारवार क्षमा मागी। और उनकी भक्ति-भाव पूर्वक स्तुति करके स्वस्थान पर चला गया। धरणेन्द्र भी प्रभु को वन्दन कर स्वस्थान को लौट गया। यू भगवान् ने आये हुए सभी उपसर्गो को हँसते-हँसते शान्ति के साथ सहन कर लिया।

मूल—तएणं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स

तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताए चउरासीइमस्स राइंदियस्स अन्तरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थी पक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायइपायवस्स अहे अट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

भावार्थ–पुरुपादानीय श्रीपार्श्वनाथ, अणगार हुए । ईर्यासमिति आदि पाच समिति और तीन गुप्ति युक्त, आत्म भावन करते हुए तिरासी दिन व्यतीत हो जाने के बाद चौरासी वे दिन, ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के प्रथम पक्ष को चतुर्थी अर्थात् चैत्र कृष्ण चतुर्थी को दिन के प्रथम प्रहर मे धातकी वृक्ष के नीचे, चौविहार छट्ट युक्त विशाखा नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर शुक्ल ध्यान ध्याते हुए भगवान् को, अनन्त अर्थोवाला सर्वोत्कृट केवलज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ, जिनसे भगवान् षट द्रव्यों तथा लोकालोक के भाव जानने और देखने लगे । यावत् तीर्थ प्रवर्तन हुआ ।

मूल–पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणधरा हुत्था तं जहा–
(१) सुभेय, (२) अज्जघोसे य (३) वसिट्ठे, (४) बंभयारि य (५) सोमे, (६) सिरिहरे चेव,

॥ १७४ ॥

(७) वीरभद्दे, (८) जसे विय ।

भावार्थ—पुरुषादानीय प्रभु पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर हुए—(१) शुभ, (२) आर्यघोष, (३) वशिष्ट, (४) ब्रह्मचारी, (५) सौम्य, (६) श्रीधर, (७) वीरभद्र, (८) यशोधर नाम से प्रसिद्ध है ।

मूल—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिन्नपामुक्खाओ सोलसमणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया हुत्था ।

भावार्थ—पुरुषादानीय अरिहन्त श्री पार्श्वनाथ स्वामी के आर्यदिन्न आदि सोलह हजार साधुओ की सम्पदा हुई ।

मूल—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामुक्खाओ अट्ठतीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था । पासस्सणं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुव्वयपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सीओ चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासग संपया हुत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनन्दा पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं

सम्पया हुत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणोयस्स अद्धधुट्ठसया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाइणं जाव चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था ।

भावार्थ–पुरुपादानीय अरिहन्त श्री पार्श्वनाथ स्वामी के पुष्प चूला आदि अडतोस हजार साध्वियो की साध्वी सम्पदा, सुव्रत आदि एक लाख, चौसठ हजार श्रावको की श्रावक सम्पदा, और सुनन्दा आदि तीन लाख सत्ताइस हजार श्राविकाओ की श्राविका सम्पत्ति थी । जिन नहीं परन्तु जिनके समान और सर्व अक्षरों के सयोग को जाननेवाले साढे तीन सौ चौदह पूर्वधारो मुनिराजो की सम्पदा थी ।

मूल–पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चउद्दससया ओहिनाणीणं, दससया केवलनाणीणं, एक्कारससया वेउव्वीणं, छस्सया रिउमईणं, दससमणसया सिद्धा, वीसं अज्जियासया सिद्धा, अद्धट्ठमसया विउलमईणं, छस्सया वाइणं, बारससया अणुत्तरोववाइयाणं ।

भावार्थ–पुरुपादानीय अरिहत श्री पार्श्वनाथ स्वामी के चौदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, ग्यारसौ वैक्रिय लब्धि धारक छ सौ ऋजुमति मन पर्यवज्ञानी साढे सात सौ विपुल मति मन.पर्यव ज्ञानी,

॥ १७६ ॥

और छः सौ वादी हुए। भगवान् द्वारा दीक्षित एक हजार मुनिराज सिद्ध हुए, दो हजार साध्वियां सिद्ध हुईं, और बारह सौ मुनिराज पांच अनुत्तर विमानवासी देव हुए।

मूल—पासस्सणं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अन्तगडभूमि हुत्था तं जहा—जुगंतकडभूमि य परियायंतकडभूमि य जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमि तिवासपरियाए अन्तमकासी।

भावार्थ—पुरुषादानीय अरिहन्त भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी के दो प्रकार की युगान्तकृत भूमि हुई। इन्हीं से लगाकर चार पट्टधारी मोक्ष में पधारे। यह हुई युगान्तकृत भूमि। और श्री पार्श्वनाथ स्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न होने के तीन वर्ष बाद, मुक्ति-मार्ग शुरू हुआ यह पर्यान्तकृत भूमि हुई।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगार-वासमज्झे वसित्ता, तेसीइं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्तरिवासाइं केवलि परियायं पाउणित्ता, पडिपुन्नाइं सत्तरिवासाइं सामन्न परियायं पाउणित्ता, एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयणामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुस-

माए समाए बहुविइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावण सुद्धे तस्सणं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचउतीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

भावार्थ—उस काल पुरुषादानीय पार्श्वनाथ स्वामी तीस वर्ष तक गृहस्थ-धर्म का पालन करते रहे। तिरासी दिन छद्मस्थावस्था मे रहे तिरासी कम सत्तर वर्ष केवली-पर्याय का पालनकर एक सौ वर्ष का सर्वायुष्य पालकर, वेदनोय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मो के क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी काल के चतुर्थ दुखम-सुखम आरे का जब अधिकाश भाग बीत गया, वर्षाकाली प्रथम मास के दूसरे पक्ष की श्रावण सुदी अष्टमो दिन, सम्मेत शिखर पर्वत के ऊपर तैतीस अन्य साधुओ के साथ एक महीने का चौविहार अनशन करके विशाखा नक्षत्र मे चन्द्र का योग आने पर दिन के प्रथम प्रहर मे, दोनो भुजाओ को फैलाकर कायोत्सर्ग मे खडे ही निर्वाण को पधारे।

मूल—पासस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खपहोणस्स दुवालसवाससयाइं विइक्कंताइं

तेरसमस्स णं अयं तीसइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

भावार्थ–अरिहन्त भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी के सब दुखो से मुक्त होकर निर्वाण मे पधारने के बाद बारहसो वर्ष बीत जाने पर तेरहवी शताब्दी के तीसवे वर्ष मे यह वृत्तान्त लिखा गया । पार्श्वनाथ प्रभु के निर्वाण के ढाइ सौ वर्ष बाद, वीर प्रभु का निर्वाण हुआ और उसके नौ सौ अस्सी वर्ष बाद, यह सूत्र लिपि बद्ध हुआ । जिससे यह कहा गया है कि तेरहवी शताब्दि का तीसवा वर्ष बीत रहा है ।

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंच चित्ते हुत्था, तं जहा–चित्ताहिं चुए, चइत्ता, गब्भं वक्कंते, तहेव उवक्खेवो जाव चित्ताहिं परिनिव्वुए ।

भावार्थ–उस काल प्रभु अरिष्टनेमि के पाच कल्याणक चित्रा नक्षत्र मे हुए–(१) चित्रा नक्षत्र मे देवलोक मे चवकर भगवान माता की गोद मे पधारे, (२) उसी चित्रा नक्षत्र मे जन्म हुआ, (३) चित्रा नक्षत्र ही मे चारित्र ग्रहण किया, (४) उसी चित्रा नक्षत्र मे, केवलज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ, (५) चित्रा नक्षत्र ही मे मोक्ष मे पधारे ।

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे

पक्खे कत्तिय वहुले, तस्स णं कत्तिय वहुलस्स वारसीपक्खेणं अपराजियाओ महाविमाणाओ बत्तीसं सागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नयरे समुद्दविजयस्स रण्णो भारियाए सिवादेवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव चित्ताहिं गब्भत्ताए वक्कंते सव्वं तहेव सुविणदंसणदविणसंहरणाइ इत्थ भाणियव्वं !

भावार्थ—उस काल भगवान् अरिष्टनेमि वर्षाकालीन चौथामास सातवा पक्ष कार्तिक कृष्ण वारस के दिन बत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले, अपराजित नामक महा विमान से अन्तर रहित चवकर इसो जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्री शौरीपुर नगर मे समुद्र विजय राजा की शिवादेवी नामक रानी की कोख से, चित्रा नक्षत्र मे चन्द्र का योग होने पर उत्पन्न हुए। उत्पत्ति के समय चौदह स्वप्नों का देखना राजा के आगे कहना, स्वप्न लक्षण पाठको का फल सुनना, नगर में उत्सव मनाना, इन्द्र की आज्ञा से धनद के तिर्यक जृम्भक देवों का धन धान्य की वृष्टि करना, इत्यादि सभी कार्य महावीर स्वामी के अधिकार के तुल्य यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्सणं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खे णं णवण्हं मासाणं बहु पडिपुण्णाणं

जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागए णं आरोग्गारोग्गं दारयं पयाया। जम्मणं समुद्दविजयाभिलावेणं नेयव्वं जाव तं होउणं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं। अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे जाव तिन्नि वाससयाइं कुमारे अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता।

भावार्थ—उस काल अरिहन्त अरिष्टनेमि वर्षा ऋतु के प्रथम मास, और उसके दूसरे पक्ष मे, श्रावण सुदी पञ्चमी को नो मास पूरे होने के पश्चात् यावत् चित्रा नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर परम स्वस्थ शिवादेवी माता की कोख से, निराबाध आरोग्य-रूप से अवतरित हुए। समुद्र विजय राजा ने जन्माभिषेक किया। यावत् इस पुत्र का नाम अरिष्टनेमि हो इतना अधिकार पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प्रभु जब गर्भ मे थे तब उनकी माता ने रिष्ट रत्न की, गोलाकार धारा आकाश के उडती हुई, स्वप्न मे देखी। यही कारण है कि उनका नाम अरिष्टनेमि रक्खा गया।

अर्हन्त अरिष्टनेमि दक्षादि गुण सम्पन्न हुए। यावत् तीन सौ वर्ष तक अविवाहित (कुमार) रूप से गृहवास मे रहे। यद्यपि माता-पिता के और श्रीकृष्ण आदि के अत्यन्त आग्रह से विवाह के लिये प्रभु मौन रहे। "मौनं सम्मति-लक्षणम्" के नाते, उसे स्वीकृति का लक्षण मानकर उग्रसेन राजा की परम सुन्दरी

कन्या, राजमति के साथ, प्रभु का सम्बन्ध निश्चित कर दिया गया। प्रभु भावो भाव के ज्ञाता थे, और इसी तरह होगा। यही दीक्षा का हेतु बनेगा। यह विचार कर, प्रभु, वर के साज सजकर वर यात्रा सहित विवाह करने के लिये पधारे। विवाह मे आये हुए मेहमानो के भोजनार्थ, वाडे मे घेरे हुए पशुओ की चीत्कार से दयार्द्र होकर प्रभु अविवाहित ही वापिस लौट गये।

भगवान के दीक्षा काल को सन्निकट जानकर, लोकान्तिक देव अपने जीतकल्प व्यवहारानुसार आये, और प्रभु से प्रार्थना करने लगे, हे कामदेव को जितने वाले, तथा समस्त जन्तुओ को अभयदाता, क्षत्रिय वर वृषभ, आपकी सदा जय-विजय हो। आप जगज्जीव हितकारी तीर्थ की स्थापना करे। लोकान्तिक देवो द्वारा प्रार्थना किये जाने पर और अपना दीक्षा काल सन्निकट जानकर, प्रभु वार्षिक दान देने लगे। और स्वजनो, तथा गोत्रियो को धन देना, वगैरह सभी अधिकार, महावीर स्वामी के समान ही समझना चाहिए।

मूल—जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठी पक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि उत्तर कुराए सीवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जाव बारवइए णयरीए मज्झंमज्झेण णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव रेवयए उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ २ त्ता सीयाओ पच्चोरूहइ

२ त्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं संद्धि मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

भावार्थ–अर्हन्त अरिष्टनेमि वर्षाकालीन प्रथम मास के दूसरे पक्ष में, श्रावण शुक्ल छठ दिन के प्रथम प्रहर मे, उत्तरकुरा नाम पालकी मे बैठकर, मनुष्य देव और असुरो की परिषदा से व्याप्त हो, यावत् द्वारिका नगरी के मध्य भाग मे से निकल जहा रैवतक नामक उद्यान था, वहा आये । अशोक वृक्ष के नीचे पालकी स्थापन कराई पालकी से नीचे उतर और स्वय ही ने आभरण,माला और आभूषणो को त्याग, पंचमुष्टि लोच किया । चौविहार छठ का तप करके चित्रा नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर तथा एक देवदूष्य वस्त्र को ले, एक हजार पुरुषो के साथ मु डित होकर आगारवास का त्याग उन्होने किया । और वे अणगार-मार्ग मे प्रवृत्त हुए । अर्थात् प्रभु ने दीक्षा धारण की ।

मूल–अरहओ णं अरिट्ठनेमी चउपन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे तं चेव सव्वं जाव पणपन्नगस्स राइंदियस्स अंतरावट्टमाणस्स जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे

॥ १८३ ॥

पक्खे आसोय वहुले तस्स णं आसोयबहुलस्स पण्णरसी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे उज्जिंत सेलसिहरे वेडसपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने जाव सव्वजीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

भावार्थ–अर्हन्त अरिष्टनेमि, चौपन अहोरात्रि पर्यन्त लगातार शरीर की सेवा शुश्रूपा रहित हो और शरीर पर से ममता को हटाकर स्थिर रहे । पूरे पचपन की अहोरात्रि के विपय मे जो वर्पाकालीन तृतीय मास और पाचवा पक्ष, अर्थात् कु वार कृष्ण अमावस दिन के पिछले भाग मे गिरनार पर्वत के शिखर पर वेतस वृक्ष के नीचे जल रहित अठ्ठम तप की समाप्ति कर चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर शुक्ल ध्यान ध्याते हुए प्रभु को अनन्त अनुपम व्याघात एवं आवरण रहित उत्तम केवल ज्ञान-दर्शन और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ । प्रभु उस केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन से सभी लोको के सभी जोवो के भावो को जानने और देखने मे समर्थं वने ।

मूल–अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारसगणहरा होत्था । वरदत्तपामुक्खाओ अट्ठारस समण साहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया हुत्था । अज्जजक्खिणिपामुक्खाओ चत्तालीसं

अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था। नंदपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सीओ उउणत्तरिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था। महासुव्वयापामुक्खाणं समणोवासिगाणं त्तिन्नि सयसाहस्सीओ छत्तीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था। चत्तारिसया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरजाव संपया हुत्था। पण्णरस सया ओहिनाणीणं, पन्नरस सया केवल नाणीणं, पन्नरससया वेउव्वियाणं, दससया विउलमईणं, अट्ठसया वाईणं सोलससाय अणुत्तरोववाइयाणं पण्णरस समणसया सिद्धा, तीसं अज्जिया सयाइं सिद्धाइं। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतगडभूमि हुत्था तं जहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमि य जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, दुवालस परियाए अंतमकासी।

भावार्थ—अर्हन्त अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर हुए। उनके पास वरदत्त प्रमुख अठारह हजार साधुओ की उत्कृष्ट साधु सपदा, आर्य यक्षिणी प्रमुख चालीस हजार साध्वियो की साध्वी-संपदा अर्हन्त अरिष्टनेमि के नन्द आदि एक लाख उनहत्तर हजार श्रावको की श्रावक-सम्पदा, तीन लाख छत्तीस हजार

॥ १८५ ॥

महासुव्रता आदि श्राविकाओं की श्राविका-सपदा, और अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान् के जिन नही परन्तु जिनके समान, तथा सर्वाक्षर-सयोग के जाननेवाले चौदह सौ चौदह पूर्वधारी मुनिराज हुए। पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, पन्द्रह सौ वैक्रिय लब्धिवाले, एक हजार विपुल मति मनःपर्यव ज्ञानवाले, आठ सौ वादी, और सोलह सौ अनुत्तर विमान मे उत्पन्न होनेवाले मुनिराज थे। भगवान के पन्द्रह सौ साधु और तीन हजार साध्विया मोक्ष मे पधारे। अर्हन्त श्री अरिष्टनेमि प्रभु के दो प्रकार की अन्तकृत भूमि हुई—(१) युगान्त कृत भूमि, (२) पर्यायान्तकृत भूमि। प्रभु के पश्चात् आठ पट्ट तक मोक्ष मार्ग चला। यही उनकी युगान्तकृत भूमि है। और उनके केवलज्ञान उत्पन्न होने के बारह वर्ष बाद मुक्ति मार्ग शुरू हुआ, वह पर्यायान्तकृत भूमि है।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी तिन्नि वाससयाइं कुमार वासं-मज्झेवासित्ता, चउप्पन्नं राइंदियाइं छउमत्थ परियायं पाउणित्ता, देसूणाणं सत्त वाससयाइं केवलिपरियायं पाउणित्ता, पडिपुन्नाइं सत्तवास सयाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता एगं वाससहस्सं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयणामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसु-समाए बहु विइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे, तस्स णं असाढ सुद्धस्स अट्ठमी पक्खेणं उप्पिं उज्जिंत सेलसिहरंसि पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं

सड्ढिं मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ता नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि वेसज्जिए कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

भावार्थ—उस काल, अर्हन्त अरिष्टनेमि ने तोन सौ वर्ष तक कुमारावास मे रहकर, चौपन अहोरात्रि पर्यन्त छद्मस्थ पर्याय को पाला । चौपन दिन कम सात सौ वर्ष तक केवली पर्याय को पाला, पूरे सात सौ वर्ष तक साधु-पर्याय को पाला । और, तब एक हजार वर्ष की पूरी आयुष्य, का उपभोग कर वेदनोय, आयुष्य नाम और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर, इसी अवसर्पिणी काल दुपमसुपम नामक चौथे आरे के वहुत कुछ व्यतोत हो जाने पर, गोष्म कालीन चौथे मास, आठवे पक्ष, अर्थात् आषाढ शुक्ल अष्टमो के दिन, गिरनार पर्वत के शिखर पर, पाच सौ छत्तोस अनगारो के साथ, चौविहार मासिक अनशन कर, चित्रा नक्षत्र मे चंद्रमा का योग आने पर मध्यरात्रि के समय पद्मासन लगा निर्वाण को पधारे । और सम्पूर्ण दुखों से मुक्त हुए ।

मूल—अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं पंचासीइमस्स वाससहस्सस्स नववास सयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

भावार्थ—अर्हन्न अरिष्टनेमि प्रभु के निर्वाण पधारने के चौरासी हजार, नौसो, अस्सी वर्ष वीत जाने

पर यह ग्रन्थ पुस्तकाकार के रूप मे आया। ऐसा समझना चाहिये।

मूल—नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स पंच वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव वाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।

भावार्थ—अरिहन्त श्री नेमिनाथ स्वामी के निर्वाण पद प्राप्त करने के पश्चात् पाच लाख, चौरासी हजार नौसौ अस्सीवा वर्ष जब बीत रहा था, तब श्री अरिष्टनेमि स्वामी निर्वाण को पधारे। तथा, इसके पश्चात् चौरासी हजार नौसौ अस्सीवे वर्ष मे पुस्तक-वाचना हुई।

मूल—मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खपहीणस्स इक्कारसवाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नववास सयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।

भावार्थ—अर्हन्त मुनि सुव्रत स्वामी के निर्वाण पधारने ग्यारह लाख, चौरासी हजार नौसौ अस्सीवे वर्ष मे। अर्थात् नेमिनाथ जी के छ लाख वर्ष पहले मुनि सुव्रत स्वामी मोक्ष मे पधारे।

मूल—मल्लिस्सणं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स पण्णट्ठिं वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव वाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।

भावार्थ—अर्हन्त मल्लिनाथ स्वामी के निर्वाण मे पधारने के पश्चात् पैंसठ लाख, चौरासी हजार नौसौ अस्सीवें वर्ष मे अर्थात् मुनिसुव्रत स्वामी से चौपन लाख वर्ष पहले मल्लिनाथ स्वामी मोक्ष मे पधारे।

मूल—अरस्स णं अरहओ जाव पहीणस्स एगे वासकोडिसहस्से विइक्कंते सेसं जहा मल्लिस्स तं च एयं पंच सट्ठिं लक्खा चउरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं तम्मि समए महावीरो निव्वुओ तओ परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ। एवं अगाओ जाव सेयंसो ताव वट्ठव्वं।

भावार्थ—अर्हन्त अरनाथ स्वामी के मोक्ष पधारने पश्चात् एक हजार करोड वर्षो के व्यतीत हो जाने पर, शेष जैसा मल्लिनाथ के विषय मे कहा गया है, वैसा ही, अर्थात् पैंसठ लाख, चौरासी हजार वर्ष बाद, यह ग्रन्थ पुस्तकारूढ हुआ। यूं श्रेयासनाथ स्वामी तक समझ लेना चाहिए। मल्लिनाथ जी से एक हजार

करोड़ वर्ष पहले अरनाथ जी मोक्ष मे पधारे ।

मूल—कुंथुस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे चउभागपलिओवमे विउक्कंते पंचसट्ठिं च सयसहस्सा सेसं जहा मल्लिस्स ।

भावार्थ—कुंथुनाथ स्वामी के निर्वाण में पधारने के पश्चात्, एक पल्योपम का चतुर्थ भाग व्यतीत होजाने पर, तथा एक हजार करोड, पैंसठ लाख, चौरासी हजार नौसौ अस्सीवे वर्ष मे पुस्तक-वाचना हुई । अर्थात् अरनाथजी से एक हजार करोड वर्ष कम एक पल्योपम के चौथाई भाग के पहले, कुन्थुनाथजी मोक्ष मे पधारे ।

मूल—संतिस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे चउभागूणे पलिओवमे विइक्कंते पण्णट्ठिं च सेसं जहा मलिस्स । धम्मस्स णं जाव प्पहीणस्स तिण्णि सागरोवमाइं पण्णट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स । अणंतस्स णं जाव प्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं पण्णट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स । विमलस्स णं जाव प्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं विक्कंताइं पण्णट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स ।

भावार्थ—श्री शान्तीनाथ स्वामी के निर्वाण पधारने के पश्चात् पौन पल्योपम व्यतीत हो जाने पर और

पेंसठ लाख इत्यादि मल्लिनाथ वत् । अर्थात् कुन्थुनाथजी से अर्धपल्योपम पूर्व शान्तीनाथजी मोक्ष मे पधारे । श्री शान्तीनथजो से पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम पहले धर्मनाथजी मोक्ष में पधारे । धर्मनाथजी से सात सागरोपम पहले श्री अनन्तनाथ जी मोक्ष मे पधारे । अनन्तनाथ जी से नौ सागरोपम पूर्व, विमलनाथ जी मोक्ष मे पधारे ।

मूल—वासुपुज्जस्स णं जाव प्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं पण्णट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स । सिज्जंसस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमसए विइक्कंते पण्णहिं च सयसहस्स सेसं जहा मल्लिस्स । सीयलस्स णं जाव प्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी तिवास अद्धनवमासाहिय बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता एयंमि समणे महावीरो निव्वुओ तओ परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

भावार्थ—वासुपूज्य स्वामी के निर्वाण से छीयालीस सागरोपम ओर पेंसठ लाख चोरासी हजार नोसो अस्सीवें वर्ष पुस्तक-वाचना हुई । अर्थात् विमलनाथजी से तीस सागरोपम पहले वासुपूज्यजी मोक्ष मे गये । वासुपूज्यजी से चौपन सागरोपम पहले श्रेयासनाथ स्वामी मोक्ष मे पधारे । शीतलनाथ स्वामी के मोक्ष मे

पधारने के, तीन वर्ष साढे आठ महीने, और बयालीस हजार वर्ष कम एक करोड सागरोपम के वाद, महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ। और उसके नौसौ अस्सी वे वर्ष मे पुस्तक वाचना हुई। श्रेयासनाथजी से एक सौ सागरोपम से कुछ कम एक करोड सागरोपम पहले शीतलनाथजी मुक्ति मे पधारे।

मूल—सुविहिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स दससागरोवम कोडिओ विक्कंताओ सेसं जहा सीयलस्स तं च इमं तिवास अद्धनवमासाहिय बायालीस वाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता इच्चाइ। चन्दप्पहस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंत सेसं जहा सीयलस्स तं च इमं तिवास अद्धनवमासाहिय बायालीस वाससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ।

भावार्थ—सुविधिनाथ स्वामी के निर्वाण पधारने के वाद, अर्थात् तीन वर्ष साढे आठ महीने और बयालीस हजार वर्ष कम दस करोड सागरोपम बीत जाने पर, महावीर स्वामी मोक्ष में पधारे। उनके नौसौ वर्ष बाद, पुस्तक-वाचना हुई। शीतलनाथ जी से नौ करोड सागरोपम पहले सुविधिनाथ जी मुक्ति में पधारे। चन्द्रप्रभु स्वामी के निर्वाण पद को प्राप्त कर लेने के बाद अर्थात् तीन वर्ष, साढ़े आठ महीने, और बयांलीस हजार वर्ष कम सौ करोड सागरोपम के बाद महावीर स्वामी मोक्ष में पधारे। उनसे नौ सौ अस्सी वर्ष के बाद पुस्तक

सागरोपम पहले चन्द्रप्रभुजी निर्वाण मे पधारे ।

वाचना हुई । मुविधिनाथजो से नव्वे करोड,

मूल—सुपासस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स एगे सागरोवम कोडिसहस्से विइक्कंते सेसं जहा सीयलस्स तं च इमं तिवासअद्धनवमासाहियवायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता इच्चाइ पउमप्पहस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स दससागरोवमकोडिसहस्सा विइक्कंता तिवास अद्धनवमासाहियवायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं सेसं जहा सीयस्स ।

भावार्थ—सुपार्श्वनाथ स्वामी के निर्वाण मे पधारने के, तीन वर्ष साढे आठ महिने और वयालीस हजार वर्ष कम एक हजार करोड सागरोपम के वाद, महावीर स्वामी मोक्ष मे पधारे । उनसे नौसौ अस्सी वर्ष वाद पुस्तक-वाचना हुई । चन्द्रप्रभुजी से नौसौ करोड सागरोपम पहले सुपार्श्वनाथजी मोक्ष मे पधारे । पद्मप्रभु स्वामी के निर्वाण-पद प्राप्त करने तीन वर्ष साढे आठ महीने और वयालीस हजार वर्ष कम, दस हजार करोड सागरोपम के वाद, महावीर स्वामी निर्वाण मे पधारे । सुपार्श्वनाथ से नौ हजार करोड सागरोपम पहले पद्मप्रभु जी ने निर्वाण पद प्राप्त किया ।

मूल—सुमइस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसयसहस्से विइक्कंते सेसं जहा सीयलस्स तिवास अद्धनवमासाहिय वायालीस वाससहस्सेहिं इच्चाइयं । अभि-

नंदणस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स दस सागरोवम कोडिसयसहस्सा विइक्कंता सेसं जहा सीयलस्स तिवास अद्धनवमासाहिय वायालीस वास सहस्सेहिं य इच्चाइयं ।

भावार्थ—सुमितनाथ भगवान् के निर्वाण मे पधारने के वाद तीन वर्ष साढ़े आठ महीने और बयालीस हजार वर्ष कम एक लाख करोड सागरोपम व्यतीत होने पर महावीर स्वामी ने निर्वाण पद प्राप्त किया। पद्मप्रभु जी से नव्वे हजार करोड सागरोपम पहले सुमितनाथजी मोक्ष मे पधारे। अभिनन्दन स्वामी के निर्वाण पधारने के वाद तीन वर्ष साढे आठ महीने और बयालीस हजार वर्ष कम, दस लाख करोड सागरोपम के बाद वीर प्रभु निर्वाण मे पधारे। सुमतिनाथ जी से नौसौ लाख, करोड सागरोपम पहले अभिनन्दन प्रभु जी ने मोक्ष धाम को प्राप्त किया।

मूल—संभवस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स वीसं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइ-क्कंता सेसं जहा सीयलस्स तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं य इच्चाइयं। ॥ १६४ ॥
अजियस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता सेसं जहा सीयलस्स तिवास अद्धनवमासाहिय बायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं ।

भावार्थ—अर्हन्त श्री सम्भवनाथ स्वामी के निर्वाण मे पधारने के तीन वर्ष, साढ़े आठ मास और बयांलीस हजार कम, बीस लाख करोड सागरोपम के वाद वीर प्रभु निर्वाण मे पधारे। अभिनन्दन स्वामी से दस लाख करोड सागरोपम पहले सम्भवनाथ जी मोक्ष मे पधारे। अजितनाथ अरिहत के निर्वाण मे पधारने के, तीन वर्ष, साढे आठ मास, और वयालीस हजार वर्ष कम पचास लाख करोड सागरोपम के वाद वीर प्रभु निर्वाण मे पधारे। सभवनाथजी से तीस लाख करोड सागरोपम पहले श्रीअजितनाथजी मोक्ष में पधारे। अजितनाथजी से पचास लाख करोड सागरोपम पहले श्री ऋषभदेव स्वामी मोक्ष मे पधारे। यूँ आदीश्वर भगवान के और महावीर स्वामी के निर्वाण का अन्तर वयालीस हजार तीन वर्ष, साढे आठ मास कम, कोटाकोटि सागरोपम का समझना चाहिए।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए चउ उत्तरासाढे अभीइ पंचमे हत्था तं जहा—उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव अभीइणा परिनिव्वुए।

भावार्थ—उस काल, अर्थात् अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्तिम चौरासी लाख पूर्व, चार वर्ष और प्राय छ महीने वाकी रहने पर अयोध्या नगरी मे समुत्पन्न भगवान ऋषभदेव स्वामी के चार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्र मे और पाचवा कल्याणक अभिजित नक्षत्र मे हुआ—(१) उत्तराषाढा नक्षत्र ही मे सर्वार्थ सिद्ध विमान से चवकर माता की कोख मे उत्पन्न हुए, (२) जन्म भी उत्तराषाढा नक्षत्र मे ही मे हुआ,

(३) उसी उत्तरापाढा नक्षत्र मे दीक्षा ली, (४) उत्तरापाढा नक्षत्र ही मे केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई। और अभिजित नक्षत्र मे भगवान का निर्वाण कल्याणक हुआ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए आषाढबहुलस्स चउत्थी पक्खेणं सव्वट्ठ सिद्धाओ महाविमाणाओ तित्तीसं सागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे इक्खागभूमीए नाभिकुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहार वक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते।

भावार्थ—उस काल, कौशलिक (कौशल देश मे उत्पन्न होने के कारण) अरिहत श्री ऋपभदेव स्वामी ग्रीष्म कालीन, चतुर्थ मास, सातवे पक्ष में, आपाढ कृष्ण चतुर्थी के दिन तैंतीस सागरोपम की स्थितिवाले सर्वार्थ सिद्ध नामक महा विमान् से अन्तर-रहित चवकर इसी जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष को इक्ष्वाकु-भूमि मे, नाभिकुलकर की मरुदेवो स्त्री की कोख मे मध्य रात्रि के समय, देव भवन सम्बन्धी आहार स्थिति, और शरीर को छोडकर गर्भ मे पधारे।

मूल—उसभे णं अरहा कोसलिए तिण्णाणोवगए आवि हुत्था। तं जहा—चइस्सामि त्ति जाणइ, जाव सुविणे पासइ तं जहा—गय वसह गाहा सव्वं तहेव नवरं पढमं उसभं मुहेणं

अट्ठं पासाइ सेसाओगयं, नाभिकुलगरस्स साहेइ, सुविणपाढगा नत्थि, नाभिकुलगरी सयमे वागरेइ।

भावार्थ—कोशलिक अरिहन्त ऋषभदेव स्वामी, गर्भ मे ही तीन ज्ञान से युक्त थे। देवलोक से मैं चवूंगा ऐसा वे जानते थे। परन्तु जिस समय उनका चवन हुआ, उस समय वे यह नही जानते थे। माता के गर्भ मे उत्पन्न होने के बाद उन्होने जाना कि मेरा चवन हो गया है। जब भगवान् देवलोक से चवकर मरुदेवी के गर्भ मे उत्पन्न हुए मरुदेवी ने, गज, वृषभ, आदि चौदह स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्न मे वृषभ को मुख मे प्रवेश करता हुआ देखा। महावीर स्वामी की माता ने पहले सिंह देखा था। मरुदेवी ने अपने स्वप्न नाभिकुलकर को कहे। उस समय, स्वप्न-पाठक नही थे। नाभिकुलकर ने ही स्वय स्वप्नो का फल कहा।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभेणं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्त बहुलस्स अट्ठमी पक्खे णं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गारोग्गं दारयं पयाया।

भावार्थ—उस काल कोशलिक अरिहन्त श्री ऋषभदेव स्वामी की, ग्रीष्म कालीन, प्रथम मास, प्रथम पक्ष, चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन नौ महिने और साढे सात दिन की गर्भ स्थिति पूर्ण होने पर उत्तराषाढा नक्षत्र मे

चन्द्रमा का योग जब हो रहा था, आरोग्यवती मरुदेवी ने आरोग्यवान् पुत्र को निरबाध रूप से जन्म दिया ।

मूल–तं चेव सव्व जाव देवा देवीओय वसुहारवासं वासिंसु सेसं तहेव चारगसोहणं माणुम्माण वद्धणं उस्सुक्कमाइयं ठिइवडियजूयवज्जं सव्वं भाणियव्वं ।

भावार्थ–तब छप्पन दिक्कुमारियो का आगमन, इन्द्रादिको का जन्माभिषेकोत्सव का हर्ष प्रदर्शन, देवी देवताओं द्वारा वसुधारा की वर्षा इत्यादि देवो के कृत्य जैसे श्री महावीर स्वामी के अधिकार मे कहे गये है । ठीक वैसे ही उस समय भी हुए । परन्तु कैदियो की मुक्ति, मान, उन्मान, प्रमाणो की बढती, करो आदि की छूट इत्यादि कुल मर्यादा के वृतान्त को छोड देना चाहिए । क्योंकि युगलिया होने से ये व्यवहार नही मनाये गये थे । शेष सब महावीर-अधिकार वत् ही समझना चाहिए ।

मूल–उसभेणं अरहा कोसलिए कासवगुत्तेणं तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा–(१) उसभेइ वा, (२) पढमराया इवा, (३) पढमभिक्खायरे इवा, (४) पढम जिणे इवा, (५) पढमतित्थंकरे इवा ।

भावार्थ–काश्यपगोत्रीय, कौशलिक अरिहन्त श्री ऋषभदेव स्वामी के पाच नाम यू कहे जाते है – (१) ऋषभ, (२) प्रथम राजा, (३) प्रथम भिक्षाचर, (४) प्रथम जिन केवली, (५) प्रथम तीर्थङ्कर ।

मूल—उसभेणं अरहा कोसलिए दक्खे, दक्खपइन्ने पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवास मज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइ रज्जवास-मज्झे वसइ, तेवट्ठिं च पुव्वसयसहस्साइं रज्जावासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ, गणियप्पहा-णाओ, सउण रूय पज्जवंसाणाओ वावत्तरिं कलाओ चउसट्ठिं महिला गुणे, सिप्पसयं च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभि-सिंचित्ता, पुणरवि लोयंतिएहि जियकप्पीएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं सेसं तं चेव भाणियव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्त-बहुले तस्सणं चित्तबहुलस्स अट्ठमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे सुदंसणाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे जाव विणीयं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवाग-च्छइ, उवागच्छित्ता असोग वर पायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ करित्ता

॥ १९९ ॥

छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं असाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं खत्तियाणं चउहिं पुरिस सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

भावार्थ—उस काल आदीश्वर भगवान् विचक्षण प्रतिज्ञा का निर्वाह करने वाले, सर्व गुण पूर्ण, अलिप्त भद्रिक और सरल स्वभावी विनीत होकर, बीस लाख पूर्व वर्ष कुमारावस्था मे रहे, तिरसठ लाख पूर्व वर्ष राज्य किया। अपने शासन काल मे लिखने की कला से लेकर, गणित प्रधान शकुनरूत तक की वहत्तर पुरुषो की[1] और स्त्रियो की चौसठ कलाए[2] सैकडो प्रकार शिल्प ये तीनो प्रजा के हित के लिए सिखाये ।

१ पुरुषो की वहत्तर कलाओ के नाम—१ लिखने-पढने की कला, २ गणित कला, ३ रूप परिवर्तन कला, ४. नृत्य कला, ५ गीत कला, ६ ताल कला, ७ वाजित्र, ८ बाँसुरी वजाने की कला, ९ नर लक्षण, १० नारी लक्षण, ११ गज लक्षण, १२ अश्व लक्षण, १३. दड लक्षण, १४ रत्न परीक्षा, १५. धातुवाद, १६ कवित्व शक्ति, १८ तर्कशास्त्र, १९ नीति शास्त्र, २० तत्वविचार (धर्मशास्त्र), २१ ज्योतिप शास्त्र, २२ वैद्यक शास्त्र, २३ पड्भापा, २४. योगाभ्यास, २५ रसायन, २६ अजन, २७ स्वप्न शास्त्र, २८ इन्द्रजाल, २९ कृपि कर्म, ३० वस्त्र विधि, ३१ जूआ, ३२ व्यापार, ३३ राज्यसेवा, ३४ शकुन विचार, ३५ वायु स्तम्भन, ३६ अग्नि स्तम्भन, ३७ मेघ वृष्टि, ३८ विलेपन, ३९ मर्दन (घर्पण), ४० ऊर्ध्व गमन, ४१. सुवर्ण सिद्धि, ४२ रूप सिद्धि, ४३ घाट वन्धन, ४४ पत्र छेदन, ४५ मर्मभेदन, ४६ लोकाचार, ४७ लोक रजन,

अपने सौ पुत्रो को पृथक-पृथक राज्यो मे अभिषिक्त करके ओर जिनकल्प व्यवहार के अनुसार लौकान्तिक देवो के द्वारा इष्ट कान्त मनोज्ञादि विशेषण युक्त वाणी द्वारा तीर्थ प्रवृत्ति के लिए प्रार्थना किये जाने पर

---

४८ कलाकर्षण, ४९ अफल फलन, ५० धार बन्धन, ५१ चित्र कला, ५२ गाम वसावण, ५३ कटक उतारण ५४. शकट युद्ध, ५५ गरुड युद्ध, ५६ दृष्टि युद्ध, ५७ वाग युद्ध, ५८ मुष्टि युद्ध, ५९ बाहु युद्ध, ६० दड युद्ध, ६१ शस्त्र युद्ध, ६२ सर्प मर्दन, ६३ भूतादि मर्दन, ६४ मन्त्र विधि, ६५ यन्त्र विधि, ६६ तन्त्र विधि, ६७ रूप पाक विधि, ६८ स्वर्ण पाक विधि, ६९ बन्धन, ७० मारण, ७१ स्तम्भन, ७२ सजीवन।

२. स्त्रियों को चौसठ कलाये—१ नृत्य, २ चित्र ३ वाजिन्त्र, ४ मन्त्र, ५ जन्त्र, ६ मेघवृष्टि, ७ शकुनविचार, ८ गज तुरग परीक्षा, ९ स्त्री पुरुष लक्षण, १० वैद्यक क्रिया ११ अजन योग, १२ वाणिज्य विधि, १३ काव्य शक्ति, १४ सर्व भाषा ज्ञान, १५ वीणादि नाद कलाओ का परिज्ञान, १६. औचित्य, १७ ज्ञान, १८ विज्ञान, १९ दम्भ, २० जल स्तम्भ, २१ गीत ज्ञान, २२ ताल ज्ञान, २३ आराम रोपण, २४ आकार गोपन, २५ धर्म विचार, २६ धर्म नीति, २७ प्रासाद नीति, २८ सस्कृत जल्पन, २९ स्वर्ण वृद्धि, ३० सुगन्धि (तेल सुरभि) करण, ३१ लीला सचारण, ३२. काम क्रिया, ३३ लिपिच्छेद (अष्टादश लिपि परिच्छेद), ३४ तत्काल बुद्धि, ३५ वस्तु शुद्धि, ३६ सुवर्ण रत्न शुद्धि, ३७ चूर्ण योग, ३८ हस्त लाघव, ३९ वचन पटुत्व, ४० भोज्य विधि, ४१ व्याकरण, ४२ शालि खडन, ४३ मुख मडन, ४४ कथा कथन, ४५ कुसुम गु थन ४६ शृगार सज्जा, ४७. अभिधान, ४८ आभरण सज्जा, ४९ भृत्योपचार, ५० गृह्याचार, ५१. सचय करण, ५२ धान्य रधन, ५३ केश बधन, ५४ वितडावाद, ५५ अक विचार, ५६ लोकव्यवहार, ५७ प्रश्नप्रहेलिका, ५८ अन्त्याक्षरी, ५९ क्रिया कल्प, ६० वर्णिका वृद्धि, ६१. घट भ्रमण, ६२. सार परिश्रम, ६३. पर निराकरण, ६४ फल वृष्टि।

सम्पूर्ण वार्षिक दानो को देकर (यद्यपि उस समय दारिद्रच का अभाव था तथापि दान मर्यादार्थ दान दिया) अपने धन को कुटुम्बियो मे विभक्त कर ग्रीष्म काल के प्रथम मास,प्रथम पक्ष,चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन पिछले भाग में सुदर्शना नाम की पालको मे बैठकर, देवता मनुष्य और असुरो द्वारा अनुगम्य मान होते हुए यावत विनीता नामक नगरी के मध्य मे से निकल कर जिधर सिद्धार्थवन नामक उद्यान मे श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था उसके नीचे यावत स्वयं हो चार मुष्टि[1] लोच करके, चौविहार छट्ठ का तप साध, आषाढा नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर, उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल और क्षत्रियकुल के चार हजार पुरुषो के साथ एक देवदूष्य वस्त्र लेकर, द्रव्य भाव से मुंडित हो और गृहवास को त्याग वे अणगार धर्म मे प्रवृत्त हुए।

मूल—उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वास सहस्सं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जाव अप्पाणं भावे माणस्स एगं वास सहस्सं विइक्कंतं तओणं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुण बहुले, तस्सणं फग्गुण बहुलस्सएक्कारसी पक्खेणं पुव्वाह काल समयंसि पुरिमतालस्स नगरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपावस अहे ॥ २०२ ॥

१ चार मुष्टि लोच करने के बाद जब भगवान् पाचवी मुठ्ठी से चोटी के बाल लेने लगे तब इन्द्र ने उनसे उतने बाल रखने की प्रार्थना की। अत वे बाल वैसे ही रहे।

अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणं तरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

भावार्थ—कौशलिक अरिहत ऋषभदेव स्वामी ने पूरे एक हजार वर्ष तक न तो अपने शरीर ही की शुश्रूषा की और न उस पर कोई ममत्व ही रक्खा । उस अवधि मे वे सम्पूर्ण ज्ञान दर्शन एव चारित्र से आत्म-चिन्तन करते रहे । एक हजार वर्षो के व्यतीत हो जाने पर शीतकाल, का चौथा मास, सातवा पक्ष अर्थात् फाल्गुन कृष्ण एकादशी को दिन के प्रथम प्रहर मे पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख नामक उद्यान मे, न्यग्रोध वृक्ष के नीचे, चोविहार अठ्ठम तप करते हुए, आषाढ नक्षत्र मे, चन्द्रमा का योग होने पर, शुक्ल ध्यान ध्याते हुए भगवान् को, अनन्त, अनुत्तम और निरावरण केवलज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ, जिससे भगवान् लोकालोक के समस्त भावो को जानने और देखने लगे ।

मूल—उसभस्सणं अरहओ कोसलियस्स चउरासीई गणहरा हुत्था । उसभस्सणं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामुक्खाओ चउरासीओ समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया हुत्था । उसभस्सणं अरहओ कोसलियस्स बंभी सुन्दरि पामोक्खाणं अज्जी

याणं तिन्नि सय सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था। उसभस्सणं सिज्जंस पामोक्खाणं समणो वासगाणं तिन्निसय साहस्सीओ पंच सहस्सा उक्कोसिया समणो वासगाणं संपया हुत्था। उसभस्सणं सुभद्दा पामोक्खाणं समणो वासियाणं पंचसय साहस्सीओ चउपन्नंव सहस्सा उक्कोसिया समणो वासियाणं संपया हुत्था। उसभस्सणं चत्तारि सहस्सा सत्तसया पन्नासा चउद्दस पुव्वीणं अजिणाणं जिण संकासाणं जाव उक्को-सिया चउद्दस पुव्विं संपया हुत्था। उसभस्सणं नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्कोसिया ओहिनाणिसंपया हुत्था। उसभस्सणं वीस सहस्सा केवल नाणीणं उक्कोसिया केवल नाणि संपया हुत्था। उसभस्सणं वीस सहस्सा छच्चसया वेउव्वियाणं उक्कोसिया वेउव्विय संपया हुत्था। उसभस्सणं बारस सहस्सा छच्चसया पन्नासा विउलमइणं अड्ढाइजेसु दीवेसु दोसुय समुद्देसु सन्नीणं पंचिदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं विउलमइ संपया हुत्था। उसभस्सणं बारस सहस्सा छच्चसया पन्नासा वाईणं उक्कोसिया वाइसंपदा

हुत्था उसभस्सणं वीसं अंते वासिसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ सिद्धाओ उसभस्सणं बावीससहस्सा नवसया अणुत्तरोववाइयाणं गई कल्लाणाणं जाव भद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइ संपया हुत्था ।

भावार्थ—कौशलिक अरिहन्त श्री ऋषभदेव स्वामी के चौरासी गणधर हुए । उनके ऋषभसेन प्रमुख चोरासी हजार साधुओ की उत्कृष्ट साधु सम्पदा, ब्राह्मी, सुन्दरी प्रमुख तीन लाख साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वी सपदा, श्रेयांस प्रमुख तीन लाख और पाँच हजार श्रावको की उत्कृष्ट श्रावक सपदा, सुभद्रा इत्यादि पाच लाख और चोपन हजार श्राविकाओ की उत्कृष्ट श्राविका सपदा, केवली नही, परन्तु केवली ही के समान चार हजार, सात सौ पचास चोदह पूर्वधरो की उत्कृष्ट सपदा, नौ हजार अवधिज्ञानियो की बीस हजार केवल ज्ञानियो की, बीस हजार, छः सौ वैक्रिय लब्धिधारियो की, ढाईद्वीप और दो समुद्र मे रहने वाले पर्याप्त सज्ञी, पञ्चेन्द्रिय जीवो के मनोगत भावो को जानने वाले, बारह हजार, छ सौ पचास विपुलमति मन पर्याय ज्ञानियो की, बारह हजार, छ सौ पचासवादियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । उनके शिष्य बीस हजार मुनिराज सिद्ध हुए । तथा चालीस हजार साध्वी जी मोक्ष मे पधारी । अरिहन्त कोशलिक श्री ऋषभदेव स्वामी के अनुत्तर विमान मे उत्पन्न होने वाले और आगामी भव मे कल्याण रूप गति वाले बाईस हजार नो सौ

॥२०५॥

मुनिराजों की सम्पदा हुई ।

मूल—उसभस्सणं अरहओ कोसलियस्स दुविहा अंतगडभूमी होत्था तं जहा—जुगंतगडभूमी परियायंतगडभूमिय जाव असंखिज्जाओ पुरिस जुगाओ जुगंतगडभूमी अंतोमुहुत्त परियाए अंतमकासी ।

भावार्थ—कौशलिक अरिहन्त ऋषभदेव स्वामी के दो प्रकार की अन्तकृतभूमि हुई—(१) युगातकृत भूमि, (२) पर्यायन्त कृतभूमि । भगवान् के पीछे अनुक्रम से असख्य पुरुष युग (पट्टधारी) मोक्ष मे पधारे । यह प्रथम युगान्तकृत भूमि हुई । भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद, अन्तर्मुहूर्त मे, मरुदेवी माता मोक्ष मे पधारी । इसे पर्यायान्तकृत भूमि समझनी चाहिए ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिये बीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, ते वट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवास मज्झे वसित्ता तेसेइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवास मज्झे वसित्ता, एगं वास सहस्सं छउमत्थ परियागं पाउणित्ता, एगं पुव्वसयसहस्सं वास सहस्सूणं केवलिपरियागं पाउणित्ता संपुन्नं पुव्वसयसहस्सं

सामन्नपरियागं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे-वेयणिज्जाउयणामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-दुस्समाए समाए इहु विइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं सेसेहिं जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माह बहुले तस्सणं माह वहुलस्स तेरसी पक्खेणं उटिपं अट्ठावय सेल सिहरंसि दसहिं अणगारसहस्सेहिं सिद्धिं चउदसमेणं भत्तेणं अप्पाणएणं अभीइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकाल समयंसि संपलियंकनिसन्ने कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

भावार्थ—उस काल, कौशलिक अरिहन्त श्री ऋषभदेव स्वामी, वीस लाख पूर्व तक कुमार वास मे रह के और तिरसठ लाख पूर्व तक राज्य कर, यूँ कुल तिरासी लाख पूर्व तक गृहस्थावास मे वे रहे । उन्होने एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय मे रहकर, एक हजार वर्ष कम एकलाख पूर्व तक केवली पर्याय का पालन किया । फिर पूरे एक लाख पूर्व तक साधु पर्याय को पाला । चौरासी लाख पूर्व का सम्पूर्ण आयुष्य पालकर, वेदनीय, आयु, नाम और गौत्र कर्म के क्षय हो जाने पर, इस अवसर्पिणी काल के सुखम-दुखम नामक तीसरे आरा का अधिकाश भाग व्यतीत हो जाने पर जब तीन वर्ष और साढ़े आठ मास बाकी रहे, शीतकाल,तीसरा मास, पाचवा पक्ष, माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन, अष्टापद पर्वत के शिखर पर, दस हजार अणगारो सहित,

चोविहार छट्ठ उपवास का तप पूरा कर अभिजित नक्षत्र मे चन्द्रमा का योग होने पर, दिवस के प्रथम प्रहर मे, पल्यक आसन से बैठे हुए, निर्वाण को पधारे और सर्व दुखो से वे मुक्त हुए।

मूल—उसभस्सणं अरहओ कोसलस्स जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स तिन्नि वासा, अद्ध नवमासा विइक्कंता तओ वि परं एगा सागरोवम कोड़ा कोड़ी तिवास अद्धनवमासाहिय वायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता एयंमि समए समणे भगवं महावीरे परि-निव्वुए तओ वि परं नववास सया विइक्कंता दसमस्सय वाससयस्स अयं असीइमे सम्वच्छरे काले गच्छई ॥

भावार्थ—कौशलिक अरिहन्त श्री ऋषभदेव स्वामी के सर्व दुखो से मुक्त होने और निर्वाण मे पधारने के पश्चात्, तोन वर्ष और साढे आठ मास जब व्यतीत हो गये तव तीन वर्ष साढे आठ मास बयालीस हजार वर्ष कम, ऐसे एक क्रोडा-क्रोडी सागरोपम बीत जाने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण मे पधारे। महावीर स्वामी के निर्वाण मे पधारने के बाद नौ सौ वर्ष बीत जाने पर जब दसवी शताब्दि का अस्सीवा वर्ष बीत रहा था, यह पुस्तक वाचना हुई। अर्थात् वीर निर्वाण से ९८० वर्ष बाद यह ग्रन्थ पुस्तकारूढ हुआ।

॥ अथ गणधरादि स्थविरावली ॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा इक्कारस गणहरा हुत्था ।

भावार्थ—उस काल श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण और ग्यारह गणधर हुए ।

मूल—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा इक्कारस गणहरा हुत्था ।

भावार्थ—शिष्य ने पूछा—भगवन् ! किसलिए ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण और ग्यारह गणधर हुए ? अन्य जिनेश्वरो के तो जितने गण हुए, उतने ही उनके गणधर कहे गये हैं । फिर, महावीर स्वामी के नौ गण और ग्यारह गणधर क्यो ? इस पर आचार्य ने कहा—

मूल—समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमस गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अग्गिभूई अणगारे गोयमसगुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेणं गोयमसगुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे

अज्ज वियत्ते भारद्दाए गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्ज सुहम्मे अग्गिवेसायण गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठस गुत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे मोरियपुत्ते कासवगुत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अंकपिए गोयमस गुत्तेणं थेरे अयलभाया हारियायण गुत्तेणं ते दुन्निवि थेरा तिन्नि तिन्नि समणसयाइं वाएंति, थेरे मेयज्जे थेरे अज्जपभासे एए दुन्निवि थेरा कोडिन्ना गुत्तेणं तिन्नि तिन्नि समणसयाइं वाएंति । से तेणट्ठेणं अज्जो एवं वुच्चइ समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा इक्कारस गणहरा हुत्था ।

भावार्थ–श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम गोत्रीय इद्रभूति (गौतम स्वामी अणगार, गौतम गोत्रीय मझले अग्निभूति अणगार, गौतम गोत्रीय छोटे वायुभूति अणगार, भारद्वाज गोत्रीय स्थविर आर्यव्यक्त और अग्नि वैश्यायन गोत्रीय आर्य सुधर्मा स्वामी मे से प्रत्येक ने पाच-पाच सौ साधुओ को वाचना दी । इनमे से प्रथम के तीन अणगार सगे भाई थे । वशिष्ट गोत्रीय मडिपुत्र स्थविर और काश्यप गोत्रीय स्थविर मौर्य-पुत्र ने साढे तीन-तीन सौ साधुओ को वाचना दी । गौतम गोत्री स्थविर अंकपित तथा हरियायन गोत्रीय

अचलभ्राता. युगल भ्राताओ तथा कोडिन्य गोत्र वाले स्थविर मेतार्य और स्थविर आर्यप्रभास में से प्रत्येक ने तीन-तीन सो साधुओ को वाचना दी। इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नो गण ओर ग्यारह गणधर हुए। इनमे से अकंपित और अचलभ्राता तथा मेतार्य ओर प्रभास को एक-ही-एक वाचना थी। इसमे नो गण ओर ग्यारह गणधर कहलाये। एक साथ वाचना लेने वालों का एक ही गण कहा जाता है।

मूल—सव्वे एए समणस्स भगवओ महावीरस्स इक्कारस गणहरा दुवालसंगिणो चउद्दसपुव्विणो, सम्मत्तगणिपिडगधारगा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा, थेरे इंदभूई, थेरे अज्जसुहम्मे य सिद्धिं गए महावीरे पच्छा दुन्निवि थेरा परिनिव्वुया। जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए णं सव्वे अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा अवसेसा गणहरा निरवच्चा वुच्छिन्ना।

भावार्थ—श्रमण भगवान् महावीर के ये ग्यारह ही गणधर आचारांग से दृष्टिवाद पर्यन्त बारह अंगो के स्वयं रचयिता होने के कारण द्वादशांगी तथा बारहवे अंग मे आने वाले चोदह पूर्वो (द्वादशांगी के ज्ञाता कहने से चौदह पूर्वों के ज्ञान का भी ग्रहण हो जाता है। तथापि चौदह पूर्वो का महत्व बताने के लिये यहां अलग

पद दिया गया है), और सम्पूर्ण गणिपिटक को धारण करने वाले, अर्थात् ज्ञानादि सर्व गुण रत्नो के करडिये के समान, सूत्र और अर्थ सहित व समस्त अक्षरो के सयोगो के प्रभाव सहित द्वादशागी को धारण करने वाले भावाचार्य हुए। ये सभी गणधर, राजगृह नगर मे चौविहार एक मास का अनशन करके सर्व दुखो से मुक्त हो, निर्वाण मे पधारे। स्थविर इन्द्रभूति और स्थविर आर्य सुधर्मा स्वामी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण मे पधारने के वाद मोक्ष मे पधारे। शेप नौ गणधर भगवान् महावीर की विद्यमानता ही मे मोक्ष मे पधार गये थे। वर्तमान काल मे जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते है वे सर्व सुधर्मा स्वामी के संतानीय है। अन्य गणधरो को शिष्य परपरा नही चल पाई, क्योकि वे अपने-अपने निर्वाण के समय स्वशिष्य समुदायो को सुधर्मा स्वामी के हाथ सौपकर निर्वाण मे पधारे।

मूल—समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं, समणस्स भगवओ महावीरस्स कासव गुत्तस्स अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायण गुत्ते थेरस्सणं अज्जसुहम्मस्स अग्गि वेसायणसगुत्तस्स अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्सणं अज्जजंबुनामस्स कासवगुत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगुत्ते। थेरस्सणं अज्जप्पभवस्स कच्चा-यणसगुत्तस्स अज्जसिज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगुत्ते थेरस्सणं अज्जसिज्जं-

भवस्स मणगपिउणो वच्छसगुत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियावणसगुत्ते संखित वायणाए ।

भावार्थ–काश्यप गोत्रवाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पट्टपर उनके शिष्य अग्नि वैश्यायन गोत्रीय श्री सुधर्मा स्वामी विराजे । उनके पाट पर, उनके शिष्य स्थविर काश्यप गोत्रीय श्री जम्बू स्वामी विराजे । उनका पाट उनके शिष्य स्थविर कात्यायन गोत्रीय आयप्रभव स्वामी को मिला । प्रभव स्वामी का पाट उनके शिष्य स्थविर, मणक के पिता वच्छगोत्रीय शय्यंभव स्वामी ने ग्रहण किया और शय्यभवस्वामी के पाट पर तुंगियायन गोत्रीय, स्थविर स्वामी आर्य यशोभद्र स्वामी सुशोभित हुए । यह संक्षिप्त वाचना है ।

मूल–अज्जजस भद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया तं जहा–थेरस्सणं अज्जजस भद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा थेरे अज्ज संभूइ विजए माढरस गुत्ते, थेरे अज्जभद्दवाहू पाइणस गुत्ते।

भावार्थ–आर्य यशोभद्र स्वामी के आगे की स्थविरावली यूँ कही गई है–तुंगियायन गोत्रीय आर्य यशोभद्र के दो शिष्य स्थविर हुए–(१) एक तो माढरस गोत्रीय स्थविर आर्य सभूतिविजय, (२) दूसरे प्राचीन गोत्र वाले स्थविर आर्य भद्रवाहु स्वामी ।

॥ २१३ ॥

मूल—थेरस्सणं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमस गुत्ते ।

भावार्थ—माढरस गोत्रीय स्थविर आर्यसभूतिविजय के शिष्य गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलिभद्र हुए । इनमे से चरम केवली, जम्बू स्वामी हुए । तथा प्रभवस्वामी, शय्यंभव स्वामी, यशोभद्र स्वामी, सभूत विजय स्वामी, भद्रबाहु स्वामी और स्थूलभद्र स्वामी, ये छः श्रुत केवली हुए ।

मूल—थेरस्सणं अज्जथूलभद्दस्य गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा-थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चसगुत्ते, थेरे अज्ज सुहत्थी वासिट्ठस गुत्ते ।

भावार्थ—गौतम गौत्रीय स्थविर आर्य स्थूलिभद्र स्वामी के दो स्थविर शिष्य हुए—(१) एक तो एलापत्य गोत्र वाले स्थविर आर्य महागिरि, (२) दूसरे वशिष्ट गोत्र वाले स्थविर आर्य सुहस्ति ।

मूल—थेरस्सणं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठस गुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुप्पडिबुद्धा कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगुत्ता । थेराणं सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगुत्ते । थेरस्सणं अज्जइं-

दद्दिन्नस्स कोसिय गुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोअमस गुत्ते । थेरस्सणं अज्ज दिण्णस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाईसरे कोसिय गुत्ते । थेरस्सणं अज्जसीहगिरि जाईसरस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगुत्ते । थेरस्सणं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरसेणे उक्कोसिय गुत्ते । थेरस्सणं अज्जवइवरसेणस्स उक्कोसियगुत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा थेरे अज्जनाइले १, थेरे अज्जपोमिले २, थेरे अज्ज जयंते ३, थेरे अज्जतावसे ४, थेराओ अज्ज नाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया, थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिली साहा निग्गया, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंता साहा निग्गया, थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति ।

भावार्थ–वशिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के दो स्थविर शिष्य हुए—(१) एक तो व्याघ्रापत्य गोत्र के कोटिक (करोड वार मन्त्र के जाप करने वाले) सुस्थित नामक स्थविर, (२) दूसरे व्याघ्रापत्य गोत्र के काकंदी नगरी मे उत्पन्न, सुप्रतिबद्ध नामक स्थविर। व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोटिक और काकदिक सुस्थित

और सुप्रतिबद्ध स्थविर के शिष्य स्थविर कौशिक गौत्रिय आर्य इन्द्रदिन्न हुए। उन इन्द्र दिन्न के शिष्य गौतम गौत्रीय स्थविर आर्य दिन्न, आर्य दिन्न के शिष्य कौशिक गोत्र वाले, जातिस्मरण ज्ञानधारी स्थविर आर्य सिहगिरि, आर्यसिहगिरि के शिष्य, गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य वज्र, उनके उक्कोशिक गोत्रीय आर्य वज्रसेन और वज्रसेन के चार स्थविर शिष्य हुए। उनमे से (१) स्थविर आर्य नागिल, (२) स्थविर आर्य पोमिल (३) स्थविर आर्य जयंत, (४) स्थविर आर्य तापस थे। स्थविर आर्य नागिल से आर्य नागिल शाखा, स्थविर आर्य पोमिल से आर्य पोमिली शाखा, स्थविर आर्य जयत से आर्य जयंती और स्थविर आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा का उद्भव हुआ।

मूल—वित्थर वायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ पुरओ थेरावली एवं पलोइज्जइ तं जहा—थेरस्सणं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नायाहुत्था, तं जहा—थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगुत्ते, थेरे अज्ज संभूइ विजए माढर-सगुत्ते। थेरस्सणं अज्ज भद्दबाहुस्स पाईणसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा—थेरे गोदासे १, थेरे अग्गिदत्ते २, थेरे जन्नदत्ते ३, थेरे सोम-

दत्ते ४, कासवगुत्तेणं थेरेहिंतो गोदासेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो इत्थं णं गोदासे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा–तामलित्तिआ १, कोडीवरिसिया २, पौंडवद्धणिया ३, दासीखव्वडिया ४, थेरस्सणं अज्जसंभूइविजयस्स माढरस गुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा–नंदण भद्दे थेरे, उवणंदे, तीसभद्दे जसभद्दे । थेरे अ सुमिणभद्दे मणिभद्दे पुन्नभद्दे अ ॥१॥ थेरे अ थूलभद्दे, उज्जुमई जंबु नामधिज्ज अ । थेरे तह पुण्णभद्दे अ ॥२॥ थेरस्सणं अज्ज संभूइविजयस्स माढरस गुत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा–जक्खा य जक्खदिन्ना भूआ तह होइ भूआदिन्ना य । सेणा वेणा रेणा भगिणीओ थूलभद्दस्स ॥ थेरस्सणं अज्ज थूलभद्दस्स गोयमस गुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा–थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चस गुत्ते, थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठस गुत्ते । थेरस्सणं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चस गुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा

अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा—थेरे उत्तरे १, थेरे वलिसहे २, थेरे धणड्ढे ३, थेरे सिरड्ढे ४, थेरे कोडिन्ने ५, थेरे नागे ६, थेरे नागमित्ते ७, थेरे छलुएरोहगुत्ते कोसियगुत्तेणं ८, थेरेहिंतोणं छलुएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थणं तेरासिया निग्गया।

भावार्थ—अब विस्तार वाचना से, आर्य यशोभद्र स्वामी से आगे की स्थबिरावली इस प्रकार कही जाती है :—तुंगियायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र स्वामी के, ये दो स्थविर शिष्य गुरु की शोभा को बढाने वाले सुशिष्य तथा प्रसिद्ध हुए। उनके नाम—(१) प्राचीन गोत्रीय आर्य भद्रबाहु स्वामी और माढरस गोत्रीय स्थविर आर्यसंभूति विजय स्वामी। प्राचीन गोत्रीय आर्य भद्रबाहु स्वामी के चार शिष्य, गुरु की शोभा को बढाने वाले और विख्यात हुए। उनके नाम—(१) स्थविर गोदास, (२) स्थविर अग्निदत्त, (३) स्थविर यज्ञ दत्त, (४) स्थविर सोमदत्त। काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदास नामक गच्छ निकला। उसकी चार शाखाए हुई। जैसे—(१) ताम्रलिप्तिका, (२) कोडिवार्षिका, (३) पोण्ड्रवर्धनिका, (४) दासी खर्वडिका माढरस गोत्रीय स्थविर आर्यसभूतिविजय के बारह बड़े ही विख्यात सुशिष्य हुए। उनके नाम—(१) नन्दन-भद्र, (२) उपनन्दन, (३) तिष्यभद्र, (४) यशोभद्र, (५) सुमनभद्र, (६) मणिभद्र (पाठान्तर गणिभद्र),

(७) पुण्यभद्र, (८) स्थूलभद्र, (६) ऋजुमति, (१०) जम्बू, (११) दीर्घभद्र, (१२) पाण्डुभद्र । माढरस गोत्रीय आर्य संभूतिविजय स्वामी के विख्यात सात सुशिष्या हुईं । जो (१) यक्षा, (२) यक्षदिन्ना, (३) भूया, (४) भूयदिन्ना, (५) सेणा, (६) वेणा, (७) रेणा के नाम से प्रसिद्ध है । ये सातो सुशिष्याएं स्थूलभद्र स्वामी की बहिने थी । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलिभद्र के सुप्रसिद्ध और गुरु की शोभा बढ़ाने वाले दो शिष्य थे—(१) एलापत्य गोत्रीय आर्य महागिरी, (१) वशिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति । एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरी के सुप्रख्यात आठ स्थविर अन्तेवासी हुए । उनके नाम—(१) स्थविर उत्तर, (२) स्थविर धनाढ्य, (४) स्थविर श्रियाढ्य, (५) स्थविर कौडिन्य, (६) स्थविर नाग, (७) स्थविर नाग मित्र, (८) स्थविर छुल्लुयरोहगुप्त । काश्यप गोत्रीय छुल्लुयरोहगुप्त से त्रैराशिक मत निकला (जीव राशि, अजीव राशि और नोजीव राशि इन तीन राशियो को मानने वाला मत त्रैराशिक मत कहलाता है ।)

मूल—थेरेहिंतोणं उत्तरवलिस्सहेहिंतो तत्थणं उत्तरवलिस्सहे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा—कोसंबिया १, सुत्तिवत्तिया २, कोडंवाणी ३, चन्दनागरी ४, थेरस्सणं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठस गुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा—(१) थेरे अज्जरोहणे, (२) भद्दजसे, (३)

मेहगणीअ, (४) कामिढ्ढी, (५) सुट्ठिअ, (६) सुप्पडिबुद्धे, (७) रक्खिअ, (८) तहरोह-गुत्तेय, (९) इसिगुत्ते, (१०) सिरी गुत्ते, (११) गणी य बंभे, (१२) गणी य सोमे। दस दोय गणहरा खलु एस सीसा सुहत्थिस्स।

भावार्थ–स्थविर उत्तर बलिस्सह से उत्तर नामक गण निकला उसकी चार शाखाए है–(१) कौशंबिक, (२) सुक्ति मुक्तिका, (३) कौटुबिनी, (४) चन्द्र नागरी। वशिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के ये बारह सुप्रख्यात शिष्य हुए। जैसे–(१) रोहण, (२) यशभद्र, (३) मेघ, (४) कामर्द्धि, (५) सुस्थित, (६) सुप्रतिबद्ध, (७) रक्षित, (८) रोहगुप्त, (९) ऋषिगुप्त, (१०) श्रीगुप्त, (११) ब्रह्मगुप्त, (१२) सोमगुप्त। ये ही बारह, गणधारी आर्य सुहस्ति के शिष्य हुए।

मूल–थेरेहिंतोणं अज्जरोहणेहिंतो कासवगुत्तेणं तत्थणं उद्देह गणे नामं गणे निग्गए तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति से किं तं साहाओ? साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा–उदुंबरिज्जिआ १ मास पूरिआ २ मइपत्ति आ ३ पन्नपत्तिआ ४ से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं? कुलाइं एवमाहिज्जंति तं जहा–

पढमं च नागभूअं, बीअं पुण सोमभूइअं होई । अह उल्ल गच्छ तइअं चउत्थयं हत्थलिज्जंतु । पंचमगं नं दिज्जं छट्ठं पुण पारिहासियं होइ । उद्देहगणस्सेए छच्च कुला हुंति नायव्वा ॥ २ ॥ थेरेहिंतोणं सिरिगुत्तेहिंतो हारियसगुत्तेहिंतो इत्थणं चारगणे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ सत्तय कुलय कुलाइं एवमाहिज्जंति । से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा—हारिअमालागारी २, संकासिया ३, गवेधुआ, ४, विज्जनागरी । से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? एवमाहिज्जंति तं जहा—पढमित्थ वत्थलिज्जं बीअं पुण पीइ धम्मियं होइ । तइअं पुण हालिज्जं चउत्थगं पूसमित्तिजं ॥ पंचमगं मालिज्जं छट्ठं पुण अज्जवेडयं होइ । सत्तमगं कन्हसहं सत्त कुला चारण गणस्स ॥२॥ थेरेहिंतो भद्दजसेहिंतो भारद्दायस गुत्तेहिंतो इत्थणं उडुवालिय गणे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्निअकुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा—चम्पिज्जिआ १ भद्दिज्जिआ २ काकंदिआ

३ मेहलिज्जिआ ४ से तं साहाओ से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति तं जहा—भद्दजसि अन्तह भद्दगुत्ति अं तइअं च होइ जसभद्दं । एयाइं उडुवालिअ गणस्स तिन्नेवय कुलाइं ॥ १ ॥ थेरेहिंतोणं कामीड्ढीहिंतो कोडालसगुत्तेहिंतो इत्थणं वेसवाडिअ गणे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा—सावत्थिआ १ रज्जपालिआ २ अन्तरिज्जिआ ३ खेमलिज्जिया ४ से तं साहाओ से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति तं जहा—गणिअं मेहलिअं कामढ्ढिअं च तह होइ इंदपुरागं च एयाइं वेसवाडिअ गणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥१॥ थेरे हिंतोणं इसिगोत्तेहिंतो काकंदिएहिंतो वासिट्ठस गुत्तेहिंतो इत्थणं माणव गणे नामं गणे निग्गए, तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्निओ कुलाइं एवमाहिंज्जंति से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति तं जहा—कासविज्जिआ १ गोअमिज्जिआ २ वासिट्ठिआ ३ सोरट्ठिया ४ से तं साहाओ । से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति

तं जहा–इसिगुत्ति इत्थपढयं, विइअं च इसिदत्तियं मुणेयव्वं। तइअं च अभिजयंतं तिन्नि कुला माणवगणस्स ॥ १ ॥ थेरेहिंतो सुट्ठिअसुप्पडिवद्धथेहिंतो कोडिअ काकंदगेहिंतो वग्घावच्चस गुत्तेहिं तो इत्थणं कोडिअगणे नामं गणे निग्गए तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिंज्जंति तं जहा–उच्चानागरी विज्जाहरी अवयरी अ मज्झिमिल्लाय। कोडिअगणस्स एआ हवंति चत्तारि साहाओ ॥ १ ॥ से तं साहाओ से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति तं जहा–पढमित्थ वंभलि लिज्ज, विंइ अं नामेण वत्थलिज्जंतु। तइ अं पुण वाणिज्जं चउत्थयं पन्हवाहणयं ॥२॥ थेराणं सुट्ठिअ सुप्पडिवुद्धाणं कोडीअ काकंदगाणं वग्घावच्चस गुत्ताणं इमे पंच थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा–थेरे अज्ज इंददिन्ने १, थेरे पिय गंथे २, थेरे विज्जाहर गोवाले कासवगुत्तेणं ३, थेरे इसदित्ते ४, थेरे अरिह दत्ते ५. थेरेहिंतो य पिय गन्थेहिंतो इत्थणं मज्झिमा साहा निग्गया।

भावार्थ–काश्यप गोत्रीय आर्य रोहण स्थविर से उद्देह नामक गच्छ निकला। उस गच्छ की चार शाखाएं और छ कुल हुए। उन शाखाओ के नाम—(१) उदुम्बरिज्जिया, (२) मास पूरिया, (३) महिपत्तिया (४) पुण्यपत्तिया है। तथा छ कुलो के नाम–(१) नागभूय, (२) सोमभूइय, (३) उल्लगच्छ (४) हत्थलिज्ज, (५) नन्दलिज्ज, (६) परिहासय। हारियस गोत्रीय स्थविर श्री गुप्त से चारण गच्छ निकला। जिससे चार शाखाएं निकली। जैसे–(१) हारिय मालागारी, (२) सकासिया, (३) गवेधूया, (४) विज्जनागरी उसी चारण गच्छ से सात कुल और निकले। जैसे–(१) वत्थलिज्ज, (२) पीइधम्मिय, (३) हालिज्ज, (४) पूसमीत्तिज्ज, (५) मालिज्ज, (६) अज्जवेडय, (७) कण्हसह। भारद्वाज गोत्रीय भद्रयश स्थविर से उडुवालिय नामक गच्छ निकला। उसकी भी चार शाखाए हुई—(१) चपिज्जिआ, (२) भद्दिज्जिया, (३) काकदिया, (४) मेहलिज्जिया। उडुवालिय गच्छ से तीन कुल हुए। जैसे—(१) भद्रयशिक, (२) भद्रगुप्तिक, (३) दशभद्रक। कामद्धि स्थविर कौडालीस गोत्रीय से वेसवाडिय नामक गच्छ निकला। उससे चार शाखाए निकली। जैसे—(१) सावत्थिया, (२) रज्जपालिया, (३) अन्तरिज्जिया, (४) खेमलिज्जिया। वेसवाडिय गच्छ से चार कुल हुए—(१) गणीय, (२) मेहिय, (३) कामाड्डिय, (४) इंदपुरग। वशिष्ठ गोत्रीय काकांदिक ऋषि गुप्त स्थविर से मानव नाम का गच्छ निकला, जिससे चार शाखए निकली। जैसे—(१) कासवज्जिया, (२) गोयमज्जिआ, (३) वासिट्ठिया और सोरट्ठिया। उसी मानव गच्छ से तीन कुल हुए वे

कुल, (१) ऋपि गुप्तिक, (२) ऋपि दत्तिक, (३) अभिजयन्त थे। व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोटिक, काकंदिक स्थविर सुस्थित–सुप्रतिबुद्ध से कोटिक नामक गच्छ निकला। उसकी चार शाखाए हुई। जो–(१) उच्चा नागरी, (२) विद्याधरी, (३) वयरी, (४) मज्झिमिल्ला है। उसी गच्छ से चार कुल भी हुए। जैसे–(१) बंभलिज्ज, (२) वत्थलिज्ज, (३) वाणिज्ज, (४) प्रश्न वाहन। सुस्थित सुप्रतिबुद्ध स्थविर के पाच अन्तेवासी सुविख्यात सुशिष्य हुए। उनके नाम, (१) इन्द्र दिन्न, (२) प्रिय ग्रन्थ, (३) विद्याधर गोपाल, (४) ऋपिदत्त, (५) अरिहदत्त। स्थविर प्रिय ग्रन्थ से मध्यमा शाखा निकली।

मूल–थेरेहिंतोणं विज्जाहर गोवालेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो इत्थणं विज्जाहरी साहा निग्गया थेरस्सणं अज्ज इंददिन्नस्स कासवगोत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अन्तेवासी गोयमस गुत्ते, थेरस्सणं अज्जदिन्नस्स गोयमस गुत्तस्स इमे दो थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा–थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरस गुत्ते १, थेरे अज्जसीहगिरी जाईसरे कोसियगुत्ते २, थेरे हिंतोणं अज्ज संति सेणए हिं तो माढरस गुत्ते हिं तो इत्थणं उच्च नागरी साहा निग्गया। थेरस्सणं अज्जसंति सेणियस्स माढरस गुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा

अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं थेरे अज्जसेणिए, थेरे अज्जतावसे थेरे अज्ज कुवेरे, थेरे अज्ज इसिपालिए थेरे हिंतोणं अज्जसेणिएहिंतो इत्थणं अज्जसेणिया साहा निग्गया। थेरे हिंतोणं अज्जतावसेहि इत्थणं अज्जतावसी साहा निग्गया। थेरे हिंतोणं अज्जकुवेरेहिंतो अज्जकुवेरी साहा निग्गया। थेरेहिंतोणं अज्जइसिपालिएहिंतो अज्जइसिपालिया साहा निग्गया। थेरस्सणं अज्जसीहगिरिस्स जाईसरस्स कोसिय गुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं थेरे धणगिरी, थेरे अज्जवइरे, थेरे अज्जसमिए, थेरे अरिहदिन्ने।

भावार्थ—काश्यप गोत्रीय विद्याधर गोपाल स्थविर से विद्याधरी शाखा निकली। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के गोतम गोत्रीय आर्यदिन्न शिष्य हुए। उनके सुप्रसिद्ध शिष्य, (१) माढरस गोत्रीय आर्य शान्ति सैनिक, (२) कौशिक गोत्रिय जाति स्मरण ज्ञान वाले स्थविर आर्यसिहगिरि थे। आर्य शान्ति सैनिक से उच्चनागरी शाखा निकली। आर्य शान्ति सैनिक के चार सुशिष्य हुए। जैसे—(१) आर्य श्रेणिक, (२) आर्य तापस, (३) आर्य कुबेर, (४) आर्य ऋषिपालित। आर्य श्रेणिक आचार्य से श्रेणिका

शाखा, आर्य तापस आचार्य से आर्य तापसी शाखा, आर्य कुवेर आचार्य से कुवेरी शाखा और ऋषि पालित से ऋषिपालित शाखा निकली। कोशिक गोत्रीय जाति स्मरण ज्ञान वाले आर्य सिंह गिरि के चार सुविख्यात शिष्य हुए। वे (१) स्थविर धन गिरि, (२) स्थविर वज्र स्वामी, (३) आर्य समित स्वामी, (४) आर्य अरिह दिन्न थे।

मूल—थेरेहिंतोणं अज्ज समिएहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थणं बंभ दीविया साहा निग्गया। थेरेहिंतोणं अज्जवयरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थणं अज्ज वइरी साहा निग्गया। थेरस्सणं अज्ज वयरस्स गोयमसगुत्तस्स इमे तिन्नि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया हुत्था तं जहा—थेरे अज्जवइरसेणिए, थेरे अज्जपउमे, थेरे अज्ज रहे। थेरेहिंतोणं अज्जवइरसेणिएहिंतो इत्थणं अज्ज नाइली साहा निग्गया। थेरेहिंतोणं अज्ज पउमेहिंतो इत्थणं अज्ज पउमा साहा निग्गया। थेरेहिंतोणं अज्ज रहेहिंतो इत्थणं अज्ज जयंती साहा निग्गया। थेरस्सणं अज्ज रहस्सवच्छस गुत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंतेवासी कोसिय गुत्ते १ थेरस्सणं अज्ज पूसगिरिस्स कोसिय गुत्तस्स अज्ज फग्गु-

मित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते २ थेरस्सणं अज्ज फग्गुमित्तस्स गोयमसगुत्तस्स अज्ज धणागिरी थेरे अंतेवासी वासिट्ठस गुत्ते ३ थेरस्सणं अज्जधणगिरिस्स वासिट्ठस गुत्तस्स अज्ज सिवभूई थेरे अंतेवासी कुच्छस गुत्ते ४ थेरस्सणं अज्जसिवभूइस्स कुच्छसगुत्तस्स अज्जभद्दे थेरे अंतेवासी कासव गुत्ते ५ थेरस्सणं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स अज्जनक्खत्ते थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ६ थेरस्सणं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स अज्जरक्खे थेरे अंतेवासी कासव गुत्ते ।

भावार्थ—गौतम गोत्रोय आर्य समित स्थविर से ब्रह्मदीपिका शाखा, और गौतम गोत्रीय आर्य वज्र स्वामी से आर्य वज्री शाखा निकली। आर्य स्थविर वज्र स्वामी के तोन सुप्रसिद्ध शिष्य हुए। जो (१) वज्र सेन स्वामी, (२) पद्म स्वामी, (३) आर्य रथ स्वामी थे। वज्र सेन स्वामी से नागली शाखा, स्थविर आर्य पद्म स्वामी से पद्म शाखा और आर्य रथ स्वामी से जयन्ती शाखा निकली। आर्य रथ स्वामी के शिष्य (१) कौशिक गोत्रीय आर्य पुष्यगिरि, (२) आर्य पुष्यगिरि के शिष्य गौतम गौत्रीय आर्य फलगुमित्र स्वामी, (३) आर्य फल्गुमित्रस्वामी के शिष्य, वशिष्ठ गोत्रीय आर्य धनगिरो, (४) आर्य धनगिरी के शिष्य कुच्छ

गोत्रीय आर्य शिवभूति, (५) आर्य शिवभूति के शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य भद्रस्वामी, (६) आर्य भद्र स्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य नक्षत्र स्वामी, (७) आर्य नक्षत्र स्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य रक्ष स्वामी हुए।

मूल—थेरस्सणं अज्ज रक्खस्स कासव गुत्तस्स अज्जनागे थेरे अंतेवासी गोअमस गुत्ते ८ थेरस्सणं अज्ज नागस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जजेहिले थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते ९ थेरस्सणं अज्ज जेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस अज्जविन्हू थेरे अंतेवासी माढरस गुत्ते १०, थेरस्स णं अज्जविन्हुस्स माढरस गुत्तस्स अज्जकालए थेरे अंतेवासी गोयमस गुत्ते ११, थेरस्सणं अज्ज कालस्स गोयमस गुत्तस्स इमे दुवे थेरा अंतेवासी गोयमसगुत्ता थेरे अज्ज संपलिए १२, थेरे अज्जभद्दे एएसिं दुन्हवि गोयमस गुत्ताणं अज्ज वुड्ढे थेरे अंतेवासी गोयमस गुत्ते १३, थेरस्सणं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगुत्तस्स अज्ज संघपालिए थेरे अंतेवासी गोयमस गुत्ते १४, थेरस्स णं संघपालियस्स गोयमस गुत्तस्स अज्ज हत्थी थेरे अंतेवासी कासव गुत्ते १५, थेरस्स णं अज्ज हत्थिस्स कासव गुत्तस्स अज्ज धम्मे थेरे अंतेवासी

॥ २२६ ॥

सावय गुत्ते १६, थेरस्स णं अज्ज धम्मस्स सावय गुत्तस्स अज्ज सीहे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते १७, थेरस्स णं अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे थेरे अंतेवासी कासवगुत्तस्स अज्ज संडिल्ले थेरे अंतेवासी १६ ।

भावार्थ–(८) आर्य रक्षसूरि के शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य नाग स्वामी, (६) नाग स्वामी के शिष्य वशिष्ठ गोत्रीय आर्य जेहिल स्वामी, (१०) आर्य जेहिल स्वामी के शिष्य माढरस गोत्रीय आर्य विष्णु स्वामी, (११) आर्य विष्णु स्वामी के शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य कालिक स्वामी, (१२) आर्य कालिक स्वामी के दो शिष्य हुए। पहले आर्य सपालित स्वामी और दूसरे आर्यभद्र स्वामी हुए—(१३) इन दोनो के शिष्य गोतम गौत्रीय आर्य वृद्ध स्वामी, (१४) उनके शिष्य गौतम गोत्रीय सघपालित हुए, (१५) सघपालित के शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य हस्ति स्वामी, (१६) उनके श्रावकगोत्रीय आर्य धर्म स्थविर शिष्य, (१७) आर्य धर्म स्थविर के शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य सिह स्थविर, (१७) आर्य सिह के काश्यप गोत्रीय आर्य धर्म स्वामी हुए (१६) आर्य धर्म स्वामी के काश्यप गोत्रीय आर्य संडिल स्वामी शिष्य हुए। यूं, विस्तृत वाचना से कुल अस्सी स्थविर बने और संक्षिप्त वाचना मे जो चार कहे है वे सब मिलाकर चौरासी स्थविर हुए।

॥ २३० ॥

गाथा-बद्ध स्थविरों की स्तुति

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं । कुच्छं सिवभूइं पि अ कोसिअ दुज्जंत कन्हे अ ॥ १ ॥
त वंदिऊण सिरसा, भद्दं वंदामि वासवं गुत्तं । नक्खं कासवगुत्तं रक्खं पिय कासवं वन्दे ॥ २ ॥
वदामि अज्जनाग च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं । विन्हुं माढर गुत्तं कालगमवि गोयमं वदे ॥ ३ ॥
गोअमगुत्त कुमार सपालिय तहय भद्दयं वदे । थेरं च अज्जवुड्ढं गोअम गुत्तं नमंसामि ॥ ४ ॥
त वदिउण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरंच संघवालिय, कासवगुत्तं पणिवयामि ॥ ५ ॥
वंदामि अज्ज हत्थिच कासवं खंतिसागर धीरं । गिम्हाण पढमे मासे कालगय चे व मुद्धस्स ॥ ६ ॥
वंदामि अज्ज धम्म च मुव्वय सीललद्धिसपन्न । जस्स निक्खमाणे देवो छत्त वरमुत्तमं वहइ ॥ ७ ॥
हत्थि कासवगुत्त धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि । सीह कासवगुत्तं धम्मं पि अ कासवं वदे ॥ ८ ॥
त वदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तणाणसंपन्नं । थेरं च अज्जजवु गोअम गुत्तं नमसामि ॥ ९ ॥
मिउमद्दव सपन्न उवउत्त नाणदसण चरित्ते । थेर च नंदिअ पिअ कासवगुत्त पडिवयामि ॥१०॥
तओ अथिर चरित्त उत्तम सम्मत्त सत्तसजुत्त । देसि गणिखमासमण माढरसगुत्तं नमंसामि ॥११॥
तत्तो अणुओगधर धीर मइसागरं महासत्त । थिरगुत्त खमासमणं वच्छसगुत्त पणिवयामि ॥१२॥

तत्तो अ नाण दंसण चरित्तं तव सुट्ठि अं गुण महंत । थेरं कुमारधम्मं वंदामि गणि गुणोववेय ॥१३॥
सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहि संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१४॥

भावार्थ—गौतम गौत्रीय फल्गुमित्र, वशिष्ट गोत्रीय धनगिरि, कुच्छगौत्रीय शिवभूति और कौशिक गोत्रीय दुर्जय कृष्ण, इन सभी स्थविरों को नमस्कार करता हूँ।

(२) पूर्वोक्त स्थविरो को विनीत भाव से नमस्कार करके, काश्यप गोत्रीय भद्र स्थविर, नक्षत्र स्थविर और रक्ष स्थविरो को नमस्कार करता हूँ।

(३) गौतम गोत्रीय नाग स्थविर, वशिष्ठ गोत्रवाले जेहिल, माढर गोत्रीय विष्णु और गौतम गोत्रीय कालिक स्थविरो को नमस्कार हो।

(४) गौतम गोत्र वाले कुमार सपालित, आर्य भद्र और स्थविर आर्य वृद्ध को नमस्कार करता हूँ।

(५) पूर्वोक्त स्थविरों को विनीत भाव से वन्दना करके, स्थिर-सत्व, चारित्र्य और ज्ञान से सम्पन्न काश्यप गोत्रीय स्थविर सघपालित को नमस्कार हो।

(६) क्षमा के सागर, धीर और फाल्गुनशुक्ल पक्ष मे दिवंगत, ऐसे काश्यप गोत्रीय आर्य हस्ति को नमस्कार करता हूँ।

(७) शील लब्धि से संपन्न और जिसके दीक्षा महोत्सव मे देवो ने छत्र किया था, ऐसे मुक्त गोत्रीय आर्य धर्म को नमस्कार करता हूँ।

(८) काश्यप गोत्रीय आर्य हस्ति, मोक्ष साधक आर्य धर्म, काश्यप गोत्रीय आर्य सिंह और आर्य धर्म स्थविर सभी को नमस्कार करता हूँ।

(९) पूर्वोक्तो को नमस्कार करके स्थिर सत्व, चारित्र्य और ज्ञान से संपन्न गोतम गोत्र वाले आर्य जम्बू को नमस्कार करता हूँ।

(१०) मधुरता एव सरलता से सपन्न, ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य युक्त, काश्यप गोत्रीय स्थविर नन्दित को वन्दना करता हूँ।

(११) तदनन्तर, स्थिर चारित्र्य वाले, उत्तम सत्व एव सम्यक्त्व युक्त माठर गोत्र वाले देसिगणी क्षमा श्रमण को नमस्कार करता हूँ।

(१२) अनुयोग धारक, धीरमति, गंभीर, सागर और महा सत्वशील वच्छ गोत्र वाले स्थिरगुप्त क्षमा श्रमण को नमस्कार करता हूँ।

(१३) तदनतर, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य मे सुस्थित, गुणों से महान् ओर गुणवन्त स्थविर कुमारगणि को वन्दना करता हूँ।

(१४) सूत्रार्थ-रूप-रत्नों से भरे पूरे, क्षमा, दम और मार्दव गुण संपन्न काश्यप गोत्रीय देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण को नमस्कार हो।

—पर्युषणा समाचारी—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, से केणट्ठेणं भंते? एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ।

भावार्थ—उस काल श्रमण भगवान् महावीर वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन व्यतीत होने पर (आपाढ शुक्ल पूर्णिमा से ५० दिन बाद अर्थात् भाद्रपद शुक्ल पंचमी को) पर्यूपणा (सवत्सरीपर्व) करते थे। हे भगवन्! ऐसा क्यो कहा गया है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वर्षा काल के एक मास और बीस दिन के बाद पर्यूपणा करते है?

मूल—जओणं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं, उक्कंपियाइं, छन्नाइं, लित्ताइं, छट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमिआइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कडाइं परिभुत्ताइं

परिणामियाइं भवंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ, समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ।

भावार्थ–प्राय वर्षा काल के प्रारम्भ मे गृहस्थ लोग अपने मकानो को (पानी की बौछार से बचाने के लिए) चटाइयो से आच्छादित करते है, उसे चूना या खडिया से पोतते है, घास आदि से उसे ढांकते है, गोबर आदि से लीपते है, विषम भूमि को सम करते है, पाषाणादि से घिस कर कोमल करते है, धूप से सुगन्धित करते है,छत का जल निकलने को नाली और घर का जल निकालने के लिए (मोरी) नालदा आदि ठीक करते है। यूं गृहस्थ लोग अपने लिए आरम्भ करके घरों को शस्त्र परिणत (उचित) करते है । साधु के निमित न तो कार्य ही हो और न साधु को इन आरम्भो का निमित्त ही बनना पड़े । बस, इसीलिए वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन व्यतीत हो जाने पर श्रमण भगवान् महावीर पर्यूषणा करते है । ऐसा कहा गया है ।

मूल–जहाणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ तहाणं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंती । जहाणं गणहरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहाणं गणहरसीसा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहाण गणहर सीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहाणं थेरा वि वासावासं

पज्जोसविंति । जहाणं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जताए समणा निग्गंथा विहरंति ते वि णं वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहाणं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहाणं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति तहाणं अम्हे वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो अंतरा वि असे कप्पइ पज्जोसवित्तए नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए ।

भावार्थ—जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने एक मास बीस दिन के बाद, चातुर्मास में पर्यूपण मनाया, ठीक उसी तरह गणधरो, गणधरों के शिष्यों और स्थविरो ने भी उसी अवसर पर, प्रत्येक चातुर्मास मे, पर्यूपण पर्व मनाया । वर्तमान मे विचरते हुए श्रमण निर्ग्रन्थ भी उन्ही का अनुकरण करते है । आचार्य, उपाध्याय और हम सब भी वैसा ही करते है । इस रात्रि का उल्लंघन करना कभी नही कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता

सक्कोसं जोअणं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठिउं अहालंदमवि ओग्गहे ।

भावार्थ—वर्षा काल मे स्थित निर्ग्रन्थ साधु और साध्वियो को, चारो दिशाओ और विदिशाओं मे एक योजन (चार कोस) और एक कोस अर्थात् पाच कोस का अवग्रह कल्पता है। अवग्रह के स्थान मे ही लन्दमात्र समय भी रहना कल्पता है। किन्तु लन्दमात्र समय भी अवग्रह मे से बाहर रहना तो कभी नहीं कल्पता (हाथ की गीली रेखा के सूखने मे जितना समय लगे वह "लन्द" है।)

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा समन्ता सक्कोसं जोअणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तेए ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित साधु, साध्वियो का, चारो दिशाओ मे पाच-पाच कोस तक, भिक्षाचरी (गोचरी) के लिए जाना आना कल्पता है। अर्थात् आने-जाने को मिलाकर कुल पाच कोस कल्पते हैं अर्थात् ढाई कोस तक जाकर वापस आना कल्पता है।[1]

मूल—जत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा नीसे कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं

---

[1] दो कोस गोचरी के लिए और आधा कोस जगल के लिए जाने इस तरह जाने आने के पाच कोस।

जोअणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ।

भावार्थ–जिस नदो मे सदैव गहरा जल रहता है, तथा जो निरन्तर बहती रहती है, वहा चारो दिशा और विदिशाओ मे भिक्षाचरी के पांच कोस जाना आना नही कल्पता ।

मूल–एरावई कुणालाए जत्थ चक्किया सिआ, एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवं चक्किया एवण्हं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गन्तुं पडिनियत्तए ।

भावार्थ–कुणाला नगरी में, एरावती नदी अल्प जल वाली है। ऐसी नदी को एक पांव जल मे रखकर और दूसरा पाव ऊपर उठाकर (जल के ऊपर अधर रखकर) यदि पार किया जा सके तो पाच कोस जाना आना कल्पता है। जल मे एक पाव से दूसरा पाव रखना पड़े तो उस नदी का उल्लघन अकल्पनीय ही है। जल का विलोडन हो तो अकल्पनीय है।

मूल–एवं च नो चक्किआ एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनिअत्तए ।

भावार्थ–उपर्युक्त (एक पांव जल में एक पाव ऊपर अधर मे) विधि से यदि नदी का अतिक्रमण न हो सके तो सभी दिशाओं में पांच कोस जाना आना नही कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्त पुव्वं भवइ दावे भन्ते ! एवं से कप्पई दावित्तए नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित साधु साध्वियों का, आचार्यादि गुरुजनों ने पहले यदि ऐसा कह दिया हो कि अमुक ग्लानादि के लिए अमुक अशनादि लाकर देना; तो वह लाया हुआ अशनादि स्वयं भोगना नही कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थे गइयाणं एवं वुत्त पुव्वं, भवइ, पडिगाहेहि भंते ! एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए नो से कप्पइ दावित्तए ।

भावाथ—चातुर्मास मे स्थित साधु साध्वियो को, अगर उनके आचार्यादि गुरुजनो द्वारा पूर्व मे ऐसा कह दिया गया हो कि अमुक अशनादि लाकर तुम उपयोग मे ले लेना (ग्लान आज नही लेगा, या दूसरा लाकर देगा), तो उनका वह अशनादि भोगना कल्पता है किन्तु ग्लानादि को देना नही कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थे गइयाणं एवं वुत्त पुव्वं भवइ दावे भंते ! पडिग्गाहेहि भंते ! एवं कप्पइ दावित्तए वि पडिग्गाहित्तए वि ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, साधु साध्वियो को, अगर उनके आचार्यादि गुरुजनो द्वारा पूर्व ही ऐसा कह दिया गया है कि "भदन्त !" अमुक अशनादि को ग्लानादि को देदेना और स्वयं भी ग्रहण करना। तो ऐसे लाये हुए अशनादि को ग्लान के लिए देना और स्वयं के लिये उसका उपभोग लेना दोनो बाते कल्पती है।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं आरुग्गाणं वलिअसरीराणं इमाओ विगइओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए तं जहा—खीरं, दहिं, णवणीअं, सप्पिं, तिल्लं गुडोइंक।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, हृष्ट-पुष्ट, आरोग्य सम्पन्न और बलवान शरीर वाले, साधु साध्वियों को ऐसे विकार पैदा करने वाली विगयों का बारम्बार कदापि उपभोग नही करना चाहिए। उन विगयों के नाम यूं है—दूध, दही, मक्खन, घी, तैल, गुड शक्कर आदि।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ, अट्ठो भंते ! गिलाणस्स, से अवइज्जा अट्ठो, से अ पुच्छे अठ्वे केवइएणं अट्ठो ? से य वइज्जा एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स जं से पमाणं वयइ से पमाण ओ घित्तव्वे, से अ विन्नविज्जा, से अ

णस्स, ... अट्ठो गिलाणस्स जं से पमाणं वयइ से पमाण ...

विन्नवेमाणे लभेज्जा, से अपमाणपत्ते होउ अलाहि इत्र वत्तव्वं सिआ से किमाहु भंते ! एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, सिया णं एवं वयंत परो वइज्जा पडिगाहे हि अज्जो तुम पच्छा भुक्खसि वा पाहिसि वा, से कप्पइ पडिगाहित्तए नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, साधु साध्वियो को, उनके आचार्यादि द्वारा पहले ऐसा कह दिया गया हो तब उस वैयावृत्य करने वाले को पूछना चाहिए कि भगवन्, कि अमुक ग्लानादि के लिए विगय ले आना । तब उस वैयावृत्य करने वाले को पूछना चाहिए कि भगवन्, कितने प्रमाण मे लाऊ ? इस पर गुरु यदि कहे कि कितनी विगय चाहिए इसके लिये ग्लान से पूछो । तब वैयावृत्य करने वाला साधु रोगी से दूध आदि का प्रमाण पूछकर, गुरु की आज्ञा पा गृहस्थ के घर से मांगकर रोगी के कहे हुए प्रमाण के अनुसार ही वस्तु ले । यदि गृहस्थ अधिक देने लगे तो मना करदे । उसपर भी कोई गृहस्थ कहे कि रोगी को जितना चाहिए उतना उसको दे देना । बाकी बचे उसे आप ले लेना या अन्य साधु को दे देना । मेरे यहां बहुत है । आप अधिक ले । यदि गृहस्थ ऐसा आग्रह करे तो अन्य के लिए लेना कल्पता है । परन्तु रोगी के नाम से अधिक लेकर आप खाना, या दूसरो को देना नहीं कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थिण थेराणं तहाप्पगाराइं कुलाइं कडाइं पत्तियाइं, थिज्जाइं वेसासियाइं संमयाइं वहुमयाइं अणुमायाइं भवन्ति तत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइ-त्तए अत्थि ते आउसो इमं वा इमं वा से किमाहु भंते ! सढ्ढी गिही गिण्हइ वा तेणीअं पि कुज्जा ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, साधु साध्वियो को इस प्रकार के अनिंद्य कुलों मे, जिनको स्थविरादि साधुओ ने श्रावक बनाये हो, जिन कुलो मे साधुओ के जाने से प्रीति उत्पन्न हो, जो कुल दानादि मे स्थिरता प्राप्त हो, जो कुल विश्वस्त हों । साधुओ का आना जाना जहा इष्ट हो, गच्छ भेद, दृष्टि राग और स्वार्थवश पक्षपात रहित होने से सभी साधुओं का जहा आना जाना हो, जहा के गृह स्वामियों ने अपने कुटुम्ब वालो और नौकरोंको आज्ञा दे रखी हो कि साधु जो मागे सो देना अथवा छोटे बडे के भेद—भाव रहित समान भक्ति वाले हो ऐसे कुलों मे अडीठ (न दिखाई देने वाली)[1] वस्तुओं के लिए ऐसा कहना कदापि नही कल्पता है कि "आयुष्मान् ! अमुक वस्तु है क्या ? इस पर शिष्य प्रश्न करता है कि भगवन्, अदृष्ट वस्तु के लिए ऐसे कुलो में याचना करना क्यो नही कल्पता है ? तब गुरु फरमाते है कि शिष्य, इसका कारण यह है कि ऐसे कुल (वंश) साधु पर बहुत

१ गृहस्थ के घर मे जिस चीज का योग न हो, उस चीज को मागना नही कल्पता ।

श्रद्धा रखते है। अतएव वहा ऐसी नही होने वाली चीज के लिये याचना करने से, श्रद्धातिरेक के कारण वह साधु के लिए मोल ला सकता है। अथवा अति श्रद्धा और भक्ति के वश होकर चोरी करके भी साधु को लाकर दे सकता है। इसलिए ऐसे श्रद्धालु घरो मे अडीठ चीजों की याचना करना कदापि नही कल्पता।

मूल—वासावासं पज्जो सवि यस्स निच्चभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति एगं गोयर कालं गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए व पविसित्तए वा, णण्णत्थायरि अवे आवच्चेण वा एवं उवज्झाय वेयावच्चेण वा तवस्सि वेआवच्चेण वा गिलाणवेआव-च्चेण वा खुडएण वा खुड्डिआए वा अव्वंजण जायएण वा।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए नित्यभोजी साधु-साध्वी को गोचरी के समय आहारादि के लिए, गृहस्थ के घर मे जाना और आना, एक वार हो कल्पता है दुवारा नही, परन्तु एक वार भोजन करने से यदि आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, ग्लान और दाढो मूछे जब तक न आवे तब तक के लघुशिष्यो की वैयावृत्य (सेवा) न हो सकती हो तो दुवारा भी भोजन और पानी के लिये गृहस्थ के घर मे प्रवेश करना और निकलना कल्पता है।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थ भत्तिअस्स भिक्खुस्स अयं एवइए विसेसे जं

से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडंग भुच्चा पिच्चा पडिग्गाहगं संलिहिअ संयमज्जिय से य संथरिज्जा कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए से अ नो संथरिज्जा एवं से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाय वा निक्खमित्तए वा पविसित्तएवा।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, एकान्तर उपवास करनेवाले साधु-साध्वी को गोचरी के लिए एक बार जाना कल्पता है, परन्तु इतनी विशेषता है कि उपवास के पारणे, प्रथम प्रहर मे, गोचरी के लिए उपाश्रय से निकलकर उद्गमादि दोष रहित, शुद्ध आहार लाकर करे। खा-पीकर पात्रो को साफ कर और वस्त्र से पोछकर यदि निर्वाह हो सके तो उतने ही आहार से वह दिवस बितावे और यदि निर्वाह न हो सके तो दूसरी बार भी गोचरी के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करना और निकलना उसे कल्पता है।

मूल—वासावसं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्सभिक्खुस्स कप्पंति दो गोयर काला गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठम भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोयर काला गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स विगिट्ठभत्ति अस्स

॥२४४॥

भिक्खुस्स कप्पंति सव्वेवि गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्ताए वा पविसित्ताए वा ॥

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित नित्य छठ (बेला करने वाले साधु साध्वी को गृहस्थो के घरो मे आहार पानी के लिए प्रवेश करना और निकलना दो वार कल्पता है। अर्थात् वे दो बार गोचरी के लिए जा सकते है। किन्तु चातुर्मास मे स्थित, नित्य अट्ठम (तेला) करने वाले साधु-साध्वियो को पारणे के दिन, तीन वार आहार पानी के लिए गृहस्थो के घरो मे प्रवेश करना और निकलना कल्पता है। वैसे ही तीन उपवास से अधिक तप करने वाले साधु-साध्वियो को पारणे के दिन, सभी गोचर काल कल्पते है। अर्थात् चार-पांच वार भी उनका गृहस्थो के घरो मे आहार पानी के लिए जाना आना कल्पता है।

मूल—वासावसं पज्जोसवियस्स निच्च भत्तिअस्स भिक्खूस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्ताए, वासावसं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खूस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा-उस्सेइमं संसेइमं चाउलोदगं। वासावासं प० छट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पंति तथा पाणगाइं पडिग्गाहित्तए तं जहा—तिलोदगं तुसोदगं जवोदगं वासा

वासं पज्जोसावियस्स अट्ठमभत्तिअस्स भिक्खूस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा–आयामं सोवीरं सुद्धवियडं से विअणं असित्थे नो चेव संसित्थे से वियणं परिपूए नो चेवणं अपरिपूए से वियणं परिमिए नो चेवणं अपिरिमिए, से वियणं बहु-संपन्न नो चेवणं अबहु संपन्ने ।

भावार्थ–चातुर्मास मे स्थित नित्य भोगी साधु-साध्वियों का सभी तरह का अर्थात् आचाराग में कथित इक्कीस प्रकार का पानी ग्रहण करना कल्पता है । वर्षा काल मे, एकत्र स्थित, एकान्तर उपवास करने वाले साध्-साध्वियो को तीन प्रकार जल ग्रहण करना कल्पता है । जैसे (१) उत्स्वेदिम-कठौती या आटे से भरे हुए हाथो के धोने से अचित बना हुआ जल, (२) संस्वेदिम-पतो को उबालकर शीतल जल से सीचे जाने पर तैयार किया हुआ जल और (३) चावलों का धोवन । चातुर्मास में स्थित, दो उपवास करने वाले साधु-साध्वियो को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है । जैसे (१) तिलों का धोवन, (२) व्रीहि अर्थात् तुपसहित चावलों का धोवन और (३) यव-जौ का धोवन । वर्षा काल मे स्थित, तीन उपवास करने वाले साधु-साध्वियो को तीन प्रकार का जल लेना कल्पता है—(१) ओसामण का जल, (२) काजी का जल और (३) उष्ण जल । चातुर्मास मे रहे हुए तेले से अधिक तप करने वाले साधु-साध्वियो को केवल गरम जल लेना कल्पता है । किन्तु वह

गरम जल भी अन्न कण से रहित तो अवश्य ही हो, सचित्त तो कदापि न हो। वह गरम जल फिर वस्त्रादि से छना हुआ भी हो, बिना छना हुआ तो भूलकर भी न हो। साथ ही वह जल भी केवल उतना ही पीया जावे, जिससे तृषा शांत हो सके अधिक नहीं।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स संखादत्तिअस्स भिक्खूस्स कप्पंति पंचदत्तिओ भोअणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स, अहवा चत्तारि भोयणस्स पंचपाणगस्स अहवा पंच भोयणस्स चत्तारि पाणगस्स, तत्थणं एगादत्ती लोणासायणमित्तमवि पडिगहिया सिया कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाएवा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, साधु साध्वियो मे कोई साधु साध्वी अभिग्रह के कारण दतियो की सख्या का नियम यदि करे तो उसे उतनी ही दत्ति पाना की और आहार के लेनी कल्पती है। ग्रहस्थ कड़छी या हाथ से एक बार मे जितना दे, चाहे वह नमक के स्वादार्थ चीटी के बराबर ही क्यो न हो, उसे दत्ति कहते है। इस प्रकार अभिग्रह करने वाले को आहार और जल को केवल पाच-पाच दत्ति या चार दत्ति आहार को और पाच दत्ति पानी की अथवा चार दत्ति पानी की और पाच दत्ति आहार को ग्रहण करना चाहिये। फिर

जितनी दत्ति का नियम उसने लिया हो केवल उतनी ही दत्ति लेना कल्पता है अधिक नही। उस दिन उसे उतनी ही दत्तियो पर सन्तोष करना चाहिये। क्योकि दूसरी बार गृहस्थो के घरो मे आहार-पानी के लिए जाना आना उसे नही कल्पता है।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथीण वा निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्त घरंतरं संखुडिं सन्नियट्टचारिस्सइत्तए। एगे पुण एवमाहंसु नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेणं संखडिं सन्नियट्टचारिस्सइत्तए। एगे पुण एवमाहंसु नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परं परेणं संखडिं सन्नियट्टचारिस्सइत्तए।

भावार्थ—चातुर्मास में रहे हुए साधु-साध्वी जो यदि संनिवृतचारी अर्थात् मना किये हुए घरों मे आहार-पानी लेने को न जा सके तथा शुद्ध आहार को ही लेता हो, उसे उपाश्रय या शैयातर के घर से लेकर सात घरों मे जीमनवार हो वहा आहार के लिए जाना नहीं कल्पता। इसमे अलग-अलग आचार्यो के अलग मत है। कोई ऐसा कहते है कि उपाश्रय को छोड़कर आगे के सात घरो में जीमनवार हो तो वहां न जाना चाहिए। किसो का ऐसा कहना है कि उपाश्रय, उपाश्रय के पास का घर छोडकर उससे अगले सात घरो मे जाना नही कल्पता। क्योकि उपाश्रय के पास के घर रागी होते है। अतः आधाकर्मादि कोई दोष न लगादे। बस

॥ २४८ ॥

उसी उद्देश्य से वहां जाना मना किया गया है।

मूल—वासावासं प० नो कप्पइ पाणिपडिग्गहिअस्स भिक्खुस्स कणग फुसिअ मित्त मवि उट्ठि कायंसि निवयमाणंसि गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्ताए वा पविसित्तए वा ॥ वासावासं प० पाणिपडिग्गहिअस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिगाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जज्जा कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा अहाछन्नाणि वा लेणाणि वा उवागच्छिज्जा रूक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा जहा से पाणिसिंदए वा दगरए वा दगफुसिया वा णो परियावज्जइ ॥ वासावासं पाणि-पडिग्गहिअस्स भिक्खुस्स जं किं चि कणगफुसिअमित्तंपि निवडइ नो से कप्पइ गाहावई कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए कर पात्री जिनकल्पी साधुओं को कण और छोटी-छोटी बूंदे अर्थात् फुहार जितनी भी वर्षा बरसते समय गृहस्थो के घरो मे आहार-पानी के लिए जाना आना कल्पता नही। वर्षाकाल

मे स्थित जिनकल्पी साधु को जो ऊपर से ढका न हो, ऐसे स्थान में भी आहार करना नही कल्पता। कदाचित खुले हुए अध बीच मे वर्षा शुरू हो जावे तो बचे हुए आहार को एक हाथ से ढक और हृदय के आगे रखकर अथवा काख मे दबा किसी ढके हुए स्थान मे या वृक्ष के नीचे चला जाना चाहिए। परन्तु आहार को सचित पानी तो कदापि न लगने देना चाहिए। और सूक्ष्म से सूक्ष्म अपकाय बरसती हो तो भी जिनकल्पी साधु को गृहस्थो के घरो मे आहार पानी के लिए जाना आना नही कल्पता।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताएवा पाणाए वा निक्खमित्ताए वा पविसित्ताएवा।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थिति करने वाले स्थविर कल्पी साधुओ को, पानी बरसते हुए, गृहस्थों के कुलो मे आहार पानी के लिए जाना आना नही कल्पता।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स निग्गंथिए वा गाहा पिंडवाए पडिआय अणुपविट्ठुस्स निग्गिज्झिअ निग्गिज्झिअ वुट्ठिकाय निवइज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहं सि वा अहे रूक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वी यदि आहार पानी के लिए गृहस्थो के घरो मे गये हों और

बाद मे वर्षा होने लगे तो गृहस्थ के घर मे वृक्षो के समूह के नीचे उपाश्रय के नीचे अथवा लोगों के बैठने की ढकी हुई जगह मे अथवा किसी वृक्ष विशेष के नीचे ठहरना कल्पता है।

मूल—तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंग सूवे कप्पइ से चाउलोदणे पडिगाहित्तए नो कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंग सुवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे कप्पइ से भिलिंग सुवे पडिगाहित्तए नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं कप्पंति से दो पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छा उत्ताइं एवं नो से कप्पंति दो वि पडिगाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिगाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते नो से कप्पइ पडिगाहित्तए।

भावार्थ—गेह वसते रहने के समय, पूर्वोक्त स्थानो मे, साधु-साध्वी जहा खडे हो, वहा पर या समीप वाले घर मे किसी साधु-साध्वी के आने के पहले चावल बनाये हो और मूग आदि की दाल पीछे बनाई हो तो चावल लेने कल्पते है, दाल लेना नही। और साधु के आने के पहले दाल बनी हो व पीछे चावल बनाये

हो तो दाल लेनी कल्पती है, चावल नही। साधु के आने के बाद चावल और दाल बनाये हो तो दोनो लेना नही कल्पता और साधु के आने के पहले दाल-चांवल बना लिये हो तो दोनो लेने कल्पते है। अर्थात् जो पदार्थ आने के पहले वनाये गये हो वे लेने कल्पते है और जो साधु-साध्वी के वहां आने पर बनाये गये हो उनको लेना नही कल्पता,

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवाय पडिआय अणुपविट्ठस्स निगिज्झिअ निगिज्झिअ वुट्ठिकाय निवइज्झा कप्पइ से अहे आरामंसि वा जाव उवागच्छित्तए नो से कप्पइ पुव्वगहिएण भत्तपाणेणं वेलं उवायणावित्तए, कप्पइ से पुव्वामेव वियडंग भुच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिअ १ संपमज्जिअ २ एगायमं भंडगं कट्टू सावसेसे सुरिए जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वी गोचरी के लिए गृहस्थो के घरो मे गये हो ओर गोचरी लेकर लौटने के समय वर्षा अधिक होने लगे तो बगीचे आदि पूर्वोक्त स्थानो मे वे ठहर सकते है परन्तु पहले लिये हुए आहार-पानी का समय उल्लंघन करना नही कल्पता। अर्थात् वर्षा बन्द न हो तो वहा निर्दोष स्थान

देख, परिमार्जन कर, आहार-पानी करले और पात्रो को साफ सुथरा कर झोली मे एकत्रित बाध दे । तथा वर्षा होने के पूरे समय तक वही ठहरे । किन्तु वर्षा बन्द होती हो न हो तो सूर्यास्त होने के पहले वे उपाश्रय में अवश्य आ जावे । क्योकि रात्रि के बाहर रहना नही कल्पता । (रात्रि मे अकेले बाहर रहने से आत्म विराधना और संयम विराधना का दोष लगता है ।)

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडिआय अणुपविट्ठस्स निगिज्झिअ निग्गिज्झिअ वुट्ठिकाए निवइज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा जाव उवागच्छित्तए । तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए निग्गंथीए एगओ चिट्ठित्तए १, तत्थ नो कप्पइ एगस निग्गंथस्स दुन्हं निग्ग ंथीणं एगओ चिट्ठित्तए २ तत्थ नो कप्पइ दुन्हं निग्गंथाण एगाए निग्गंथीए एगओ चिट्ठित्तए ३ तत्थ नो कप्पइ दुन्हं निग्गंथाणं दुन्हं निग्गंथिणं एगओ चिट्ठित्तए ४, अत्थि अ इत्थ केइ पंचमे खुडुए वा खुड्डिआए वा अन्ने सिं वा संलोए सपडिदुवारे एवंण्हं कप्पइ एगओ चिट्ठित्तए ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित, साधु-साध्वी गोचरी के लिए गृहस्थो के घरो पर गये हो और पीछे से वर्षा

जोर से आ जावे तो बगीचे आदि आवृत स्थानो मे ठहर जाना कल्पता है । परन्तु वहां (१) एकान्त में किसी एक साधु को, किसी एक साध्वी के साथ, (२) अथवा एक साधु को दो साध्वियो के साथ, (३) अथवा दो साधुओं को एक साध्वी के साथ, (४) अथवा दो साधुओं को दो साध्वियों के साथ खडे रहना तो किसी भी प्रकार से नही कल्पता । परन्तु हा, पाचवां यदि कोई साधु अथवा साध्वी हो अथवा जहां कई लोगों की दृष्टि पडती हो,जहा अनेको दरबाजे हो जिनमे से लोगों का आवागमन होता हो तो,इस प्रकार खडा रहना कल्पता है ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावई कुलं पिंडवाय पडिआए अणुप्पविट्ठस्स निग्गिज्झिअ निग्गिज्झिअ बुट्ठिकाए निवइज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि जाव उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स य एगाए अगारीए एगओ चिट्ठित्तए एवं चउभंगो अत्थि अ इत्थ केइ पंचमे थेरे वा थेरिया या अन्नेसिं वा संलोय सपडिदुवारे एवं कप्पइ एगओ चिट्ठित्तए एवं चेव निग्गंथीए अगारयस्स य भाणियव्वं ।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु के आहारादि के लिए गृहस्थों के घरो मे प्रविष्ट होने पर, यदि मेह बरसने लगे तो आरामादि (बगीचा वगैरह) स्थानो मे या गृहस्थो के वैठने के स्थानों मे ठहर जाना साधुओ

को कल्पता है, परन्तु वहा एक साधु को एकान्त में एक स्त्री के साथ, एक साधु को दो स्त्रियों के साथ, दो साधुओं को एक स्त्री के साथ या दो साधुओं को दो स्त्रियो के साथ ठहरना नही कल्पता । हा पाचवा साधु या साध्वी साक्षी हो, अथवा जहा सभी की दृष्टि पडती हो, जहा कई द्वार हो, वहा ठहरना कल्पता है । इसी तरह एक साध्वी को, एक गृहस्थ के साथ आदि के चारो भंगों से रहना नहीं कल्पता ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स नो कप्पइ निग्गंथीण वा निग्गंथाण वा अपरिन्नएणं अपरियिन्नयस्स अट्ठाए असणं वा १ पाणं वा २ खाइमं वा ३ साइमं वा जाव पडिगाहित्तए । से किमाहु भंते ! इच्छा परो अपरिन्नए भुंजिज्जा इच्छापरो न भुंजिज्जा ।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वियो को, "मेरे लिये यह असन लाओ" इस प्रकार विना कहे या 'मै तुम्हारे लिए यह लाता हूँ' यह सूचित किए विना, उस साधु के लिए किसी भी प्रकार का अन्न, जल, मिष्टान्न और स्वादिम चारो प्रकार का कोई भी आहार गृहस्थो के घरो से लाना नही कल्पता । शिष्य पूछता है कि किसी साधु को विना पूछे उसके लिए आहारादि लाना क्यो नही कल्पता । इस पर आचार्य समाधान करते है कि विना पूछे लाने से उसकी इच्छा हो तो वह आहार करे और इच्छा न हो तो नही । अरुचि अथवा शर्म के मारे आहार करेगा तो अजीर्णादि दोष हो जावेगे । और नही करेगा तो परठने से संयम

विराधना और आत्म विराधना हो जावेगी। अतः किसी साधु से पहले पूछे बिना उसके लिए आहारादि लाना नही कल्पता।

मूल—वासावासं पज्जोसवियस्स नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएणं असणं वा, पाणं वा खाइमं वासाइमं वा आहारित्तए। से किमाहु भंते! सत्त सिणेहाययणा पन्नत्ता तं जहा—पाणी १, पाणिलेहा २, नहा ३, नहसिहा ४, भमुहा ५, अहरुठा ६, उत्तरुट्ठा ७। अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदए मे काए, छिन्नसिणेहे एवं से कप्पइ असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित साधु-साध्वियो को, जब शरीर पानी से गीला या स्निग्ध (कमगीला) हो, चारो प्रकार का आहार करना नही कल्पता। शिष्य प्रश्न करता है कि, भगवन्, ऐसा क्यो कहा गया है ? इस पर आचार्य फरमाते है कि शरीर पर के सात स्थानो मे पानी देर से सूखता है। वे स्थान, (१) हाथ, (२) हाथ को रेखाएं, (३) नाखून, (४) नाखून का अग्रभाग, (५) भौहे, (६) ओठो के ऊपर का भाग (मूंछे) (७) ओठो के नीचे का भाग। जब यह मालूम हो जावे कि शरीर पूरा सूख गया है तब चारो प्रकार का आहार करना कल्पता है।

मूल–वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं छउमत्थेण निग्गंथेण वा निग्गंथिणा वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं, पासियव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति तं जहा–पाण सुहुमं, पणग सुहुमं, बीअ सुहुमं, हरिअ सुहुमं, पुप्फसुहुमं, अंडसुहुमं, लेण सुहुमं, सिणेह सुहुमं।

भावार्थ–चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वियों को निश्चय से ये आठ प्रकार के सूक्ष्म, छद्मस्थ साधु-साध्वी के लिए शस्त्रो द्वारा जानने योग्य, आखो द्वारा देखने योग्य देखकर प्रतिलेखन करने योग्य है। ये आठ सूक्ष्म ये हैं–(१) प्राण-सूक्ष्म, (२) पनक सूक्ष्म, (३) बीज सूक्ष्म, (४) हरित सूक्ष्म, (५) पुष्प सूक्ष्म, (६) अड सूक्ष्म, (७) लयन सूक्ष्म, (८) स्नेह सूक्ष्म।

मूल–से किं तं पाण सुहुमे १ पाण सुहुमे पंचविहे पन्नते तं जहा–किन्हे १, नीले २, लोहिए ३, हालिद्दे ४, सुक्किल्ले ५, अत्थि कुंथू अणुद्धरी नाम समुपन्ना जा ठिआ अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं वा नो चक्खुफासं हव्वमागच्छंति जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चक्खुफासं हव्वमागच्छइ जाव छउ-

मत्थेणं निग्गंथेण अभिक्खणं २ जाणिअव्वा, पासिअव्वा, पडिलेहियव्वा भवइ, से तं पाण सुहुमे १। से किं तं पणग सुहुमे ? पणग सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते तं जहा—किण्हे जाव सुक्किले। अत्थि पणग सुहुमे तद्दव्वसमाणवन्नए नामं पन्नत्ते, जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियव्वे भवइ। से तं पणग सुहुमे २। से किं तं बीअ सुहुमे ? बीअ सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते तं जहा—किण्हे जाव सुक्किले, अत्थि बीअ सुहुमे कणियासामान वन्नए नामं पन्नत्ते, जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहियव्वे भवइ, से तं बीअ सुहुमे ३। से किं तं हरि अ सुहुमे ? हरिअ सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते तं जहा-किण्हे जाव सुक्किले, अत्थि हरिअ सुहुमे पुढवी समानवण्णए नामं पन्नत्ते जे निग्गंथेण वा जाव पडिलेहिअव्वे भवइ से तं हरि अ सुहुमे ४, से किं तं पुप्फसुहुमे ? पुप्फ सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते तं जहा—किन्हे जाव सुक्किले, अत्थि पुप्फ सुहुमे रूक्ख समाणवन्नए नामं पन्नत्ते जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहिअव्वे भवइ से तं पुप्फसुहुमे ५। से किं तं अण्डसुहुमे ? अण्डसुहुमे

पंच विहे पन्नत्ते तं जहा—उद्दंसंडे १ उक्कलि अण्डे २ पिपीलि अण्डे ३ हलि अण्डे ४ हल्लोहलि अण्डे ५, जे निग्गंथेण जाव पडिलेहिअव्वे भवइ से तं अण्ड सुहुमे ६। से किं तं लेण सुहुमे ? पंचविहे पन्नत्ते तं उत्तिंगलेणे १, भिंगुलेणे २, उज्जुए ३, तालमूलए ४, संबुकावट्टे ५ नामं पंचमे जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहिअव्वे भवइ, से तं लेण सुहुमे ७, से किं तं सिणेह सुहुमे ? सिणेह सुहुमे पंचविह पन्नत्ते तं जहा—उस्सा १ हिमए २, महिआ ३, करए ४, हरतणुए जे छउमत्थेणं जाव पडिलेहिअव्वे, भवइ से तं सिणेह सुहुमे।

भावार्थ—शिष्य पूछता है कि प्राण-सूक्ष्म क्या है ? आचार्य उत्तर फरमाते हैं कि प्राण सूक्ष्म पांच प्रकार का है अर्थात् काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। अणुद्धरी (जिनका बचाव कठिन है), कुंथुए जब स्थित और नही चलते तब छद्मस्थ साधु-साध्वियो को, आसानी से, आंख द्वारा दिखाई नही देते। और जो चलते है, वे भी कठिनाई से दिखाई देते है। इसीलिए छद्मस्थ साधु-साध्वियो को इनका स्वरूप समझ लेना देख लेना और परिमार्जन कर लेना चाहिए। यह प्राण सूक्ष्म है। पनग सूक्ष्म के विषय मे प्रश्न किए जाने पर आचार्य फरमाते हैं कि पनक (नीलन फूलन) सूक्ष्म अर्थात् कृष्ण, नीला, पीत, रक्त, और शुक्ल यो पाच वर्ण का होना है। यह जिस रग का पदार्थ होता है, उसी रग की उत्पत्ति होती है। इसका स्वरूप समझकर परिमार्जन

करना चाहिए । यह पनक सूक्ष्म है। गेहूँ, चावल आदि धान्य के मुंह पर बीज रूप से छोटे-छोटे कण होते हैं। वे ही बीज सूक्ष्म है । ये भी पूर्वोक्त पाच वर्ण के होते है। जिस वर्ण का कण होता है, उसी प्रकार का उसका वर्ण भी होता है । यह बीज सूक्ष्म है । छद्मस्थ साधु-साध्वी को इसका स्वरूप समझना, देखना और जान लेना चाहिए । हरित सूक्ष्म भी पाच ही वर्ण का होता है । जो उत्पन्न होते समय पृथ्वी के समान वर्ण वाले सूक्ष्म अकुर होते है, साधु-साध्वी को इसका स्वरूप समझना चाहिए । पुष्प सूक्ष्म के भी पाच भेद है । कृष्ण, नील पीत, रक्त और शुक्ल । ये वृक्षो के वर्ण के समान होते है—(१) मधुमक्खी, खटमल वगैरह के अडे उद्दंशाण्ड, (२) कोलिका के अडे, (३) कीड़ियो के अडे, (४) गिलहरी आदि के अडे, (५) काकीड़ा आदि के अंडे । साधु-साध्वियो को इन्हे जानना, देखना और परिमार्जन करना चाहिए। लयन सूक्ष्म भी पांच प्रकार के है । सूक्ष्म जीवो के रहने के स्थान (बिल) को लयन सूक्ष्म कहते है—(१) उत्तिग लयन-पृथ्वी मे गोलाकार छोटे-छोटे खड्डे बनाकर उनमे गर्दभ के आकर के जीव रहते है । लोक रूढ़ि मे इन्हे बालहस्ति कहते है, (२) भृगु लयन, तालाब आदि मे जल के सूख जाने पर मिट्टी पर पापड़ी बध जाती है, (३) सीधा बिल, (४) ताल वृक्ष के आकार का नीचे चौड़ा और उपर सूक्ष्म ऐसा बिल ताल मूल है, (५) शम्बुकावर्त भ्रमर का बिल । छद्मस्थ साधु-साध्वियो के लिए ये जानने, देखने और प्रति लेखन करने योग्य है । स्नेह सूक्ष्म भी पाच प्रकार के है—(१) ओस, (२) हिम, (३) धूधर, (३) करक अथवा ओले, (५) वृक्षो के अंकुरो पर के जल बिन्दु । छद्मस्थ

॥ २६० ॥

साधुओं को उन्हें जानना, देखना और प्रतिलेखन करना चाहिए। यह स्नेह सूक्ष्म हुए।

मूल—वासावासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा उवज्झायं वा वा थेरं पवत्तिं गणिं गणहरं गणावच्छेयं वा पुरओ काउं विहरइ, कप्पइ से आपुच्छिउ आयरियं वा जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ, इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गा भत्त. पा. नि. प. ते य से विपरिज्जा एवं से कप्पइ गा. भ. पा. नि. प. ते य से नो वियरिज्जा एवं से नो कप्पइ भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्ताए वा पविसित्तए वा से किमाहु भंते ? आयरिया पच्चवायं जाणंति। एवं विहार भूमि वा अन्नं वा जं किं चि पओयणं एवं गामाणुगामं दुइज्जित्तए।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वी, गृहस्थो के घरो मे आहार-पानी के लिए जाना आना चाहे तो आचार्य (गच्छ के नायक), उपाध्याय सूत्रार्थ पढाने वाले, स्थविर (चचल चित्तवालो को स्थिर करने वाले), प्रवर्त्तक (ज्ञानादि मे प्रवृत्ति कराने वाले), गणि (जिनके पास साधु या आचार्यादि सूत्रार्थ का अभ्यास

करे) गणधर (तीर्थङ्करो के मुख्य शिष्य), गणावच्छेदक (जो साधुओ को लेकर अलग विचरे), या जिस किसी को गुरु मानकर विचरा जाता है, उनको पूछकर जाना कल्पता है। बिना पूछे हुए गोचरी जाना नही कल्पता। आहार के लिए जाने के समय वदना पूर्वक "हे स्वामिन् आपकी आज्ञा हो तो गृहस्थो के घर गोचरी के लिए जाना चाहता हूँ", ऐसा कहने पर यदि आचार्यादि यावत् गीतार्थ साधु आज्ञा दे तो गोचरी जाना कल्पता है। यदि आज्ञा नही दे तो आहार-पानी के लिए जाना नही कल्पता। शिष्य प्रश्न करता है कि "स्वामिन्, ऐसा क्यो ?" आचार्य फरमाते है कि आचार्यादि गीतार्थ साधु यदि किसी प्रकार का विघ्न हो तो उसका निवारण करने मे समर्थ होते है। इसीलिए उनसे पूछकर गोचरी जाना कल्पता है। इसी तरह विहार, स्थण्डिल भूमि में जाना और अन्य कोई भी कार्य जैसे—एक गांव से दूसरे गांव मे विचरना वगैरह कार्य गुरुजनों से पूछकर ही करना चाहिए।

मूल—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अन्नयरिं विगइं आहारित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरिअं वा जाव गणावच्छेअयं वा जं वा पुरुओ काउं विहरइ कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव आहारित्तए, इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, ते य से नो विअरेज्जा एवं से नो कप्पइ

अन्नयरिं विगइं आहारित्तए से किमाहु भंते ? आयरिया पच्चवायं जाणंति ।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित साधु-साध्वी, यदि घी, दूध आदि विगय का सेवन करना चाहे तो आचार्य,
गणावच्छदेक अथवा गीतार्थ साधु को पूछे विना सेवन करना नही कल्पता । विगय को इच्छा करने वाला
साधु आचार्यादि से इस प्रकार पूछे, "स्वामिन्, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अमुक विगय सेवन करना
चाहता हूँ ।" ऐसा पूछने और उनकी ओर से आज्ञा प्रदान करने पर उस विगय का सेवन कल्पता है, किन्तु
वे आज्ञा प्रदान न करे, तो नही । शिष्य प्रश्न करता है "भगवन्, इसका क्या प्रयोजन ?" गुरु समाधान करते
है कि आचार्यादि अपाय (हानि) आदि के निवारण मे समर्थ होते है । अत उनसे पूछना चाहिए ।

मूल—वासावासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा अन्नयरियं तेगीच्छिअं आउ हित्तए
तं चेव सव्वं भाणियव्वं । वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अन्नयरं उरालं कल्ला-
णं सिवं धन्नं मंगलं सस्सिरीयं महाणुभावं तवो कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहिरित्तए तं
चेव सव्वं भाणियव्वं । वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अपच्छिममारणंतिअ
संलेहणा जूसणा झूसिए भत्तपाणपडिआइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे,
विहिरित्तए वा निक्खमित्तए व, पविसित्तए वा, असणं पाणं खाइमं साइमं आहारित्तए,

उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठावित्तए, सज्झायं वा करित्तए, धम्म जागरियं वा जागरित्तए नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता तं चे व ।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वियो मे से यदि कोई वात, पित्त कफ-जन्य रोगो की चिकित्सा कराने की इच्छा करे तो पूर्वोक्त विधि से आचार्यादि की आज्ञा लेकर करानी कल्पती है, किन्तु बिना आज्ञा के नही कल्पती। इसी तरह वर्षा काल मे रहा हुआ कोई साधु किसी प्रशस्त, कल्याणकारी, उपद्रवहारी, धन्य करने वाला, शोभनीय और महा प्रभाव वाले तप को अगीकार करना चाहे, तो उसे गुरु (आचार्यादि) की आज्ञा प्राप्त करके ही करना कल्पता है, अन्यथा नही। यही बात चातुर्मास मे स्थित कोई साधु मरणान्तिक सलेखना करने की इच्छा करे अर्थात् अनशन करने की इच्छा करे, आहार पानी का प्रत्याख्यान या पादोपगमन अनशन करना चाहे, अथवा गृहस्थो के घरो मे गोचरी आदि किसी कार्य के लिए जाना चाहे, अनशनादि चार प्रकार का आहार करना चाहे, मलमूत्र परठाना चाहे, स्वाध्याय करना चाहे या रात्रि मे धर्म जागरण करने की इच्छा करे, उसके लिए भी लागू होती है। अर्थात् प्रत्येक कार्य आचार्यादि से पूछे बिना नही कल्पते। पूर्वोक्त विधि से प्रत्येक कार्य करने के पहले गुरु की आज्ञा प्राप्त करनी ही चाहिए। गुरु आज्ञा दे तब ही वह कार्य करना कल्पता है, अन्यथा नही। क्योकि गुरु लाभ, अलाभ, गुण-दोष हानि-वृद्धि, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि के ज्ञाता होते है। अत वे योग्य समझेगे तो ही आज्ञा देगे, अन्यथा नही।

मूल—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंवल वा पायपुंच्छणं वा अन्नयरं वा उवहिं आयावत्तए वा,पायावत्तए वा नो से कप्पइ एगं वा अणेगं वा अप्पडिन्नवित्ता गहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा,निक्खमित्ताए वा पविसित्ताए वा,असणं, पाणं, खाइमं, साइमं वा आहारित्तए,वहिआ विहार भूमिं वा विआरभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए, काउस्सगं वा ठाणं वा ठाइत्तए, अत्थि अ इत्थकेइ अभिसम्मण्णागए अहासन्निहिए, एगे वा अणेगे वा कप्पइ से एवं वइत्तए इमं ता अज्जो तुमं मुहुत्तगं जाणाहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउसग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए से अ से पडिसुणिज्जा एवं से कप्पइ गाहावइकुलं तं चेव सव्वं भाणियव्वं से य से नो पडिसुणिज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइ कुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं ठाइत्तए ।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वियो को वस्त्र, पात्र, कवल, रजोहरण आदि उपधि (सामग्री) को एक या अनेक बार धूप मे रखने की आवश्यकता प्रतीत हो तो, एक या अनेक साधु को चिताये विना, उसे गृहस्थो के घरो मे आहारादि के लिए, उपाश्रय से वाहर और स्थण्डिल भूमि मे जाना, स्वाध्याय करना,

कायोत्सर्ग करना, अथवा एक आसान से स्थित रहना नही कल्पता, किन्तु पास मे रहने वाले एक या अनेक साधु हो तो उन्हे इस प्रकार कहे कि "आर्य, जब तक मै गृहस्थ के घर जाऊं-आऊ, सम्पूर्ण कायोत्सर्ग करू और एकासन से स्थिर रहू, तब तक यह उपधि आप संभाले।" यदि वे उस उपधि को सभालना स्वोकार कर ले तो गाचरी के लिए गृहस्थो के घर जाना, आहार हित असनादिक लाना, शरीर चिन्ता के लिए जाना, स्वाध्याय या कायोत्सर्ग करना तथा वीरासन आदि एक आसन से बैठना आदि सभी बाते कल्पती है। किन्तु उनके द्वारा सभालना, स्वोकार न करने पर पूर्वोक्त कोई भी कार्य का करना नही कल्पता।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा अणभिग्गहिअ सिज्जासणिएणं हुत्तए, आयाणमेयं अणभिग्गहिअ सिज्जासणियस्स अणुच्चा कुईअस्स अणट्ठा बंधीअस्स अमिआसणिअस्स अणाताविअस्स असमियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं अपडिलेहणासीलस्स अपमज्जणासीलस्स तहा तहाणं संजमे दुराराहए भवइ ॥ ॥ २६६ ॥

भावार्थ—वर्षा काल मे स्थित साधु-साध्वियो को शैया, आसन ग्रहण किये बिना रहना नही कल्पता क्योकि शैया और आसन ग्रहण न करने से, शीत प्रधान भूमि मे सोने-बैठने से कुंथुआ आदि की विराधना हो

अतएव शैया व आसन (पाट, पाटला) को अवश्य
मकती है, इससे यह बात पाप का कारण बन जाती है। वीच मे वशकंवादि लकडी डालकर या वध लगाकर
गहण करना चाहिए। यदि पाटा हिलता हो तो पायो के वहा नही लगाना चाहिए। पक्ष में केवल एकबार
उसे दृढ करलेना चाहिए। किन्तु चार वध से अधिक वध लगाने वाले, बार-बार आसन वदलनेवाले
वंध खोलकर परिमार्जन कर लेना चाहिए। चार वध से अधिक वध ईर्यादि पाच समितियो के विपय मे
(अनेको आसन वाले), सस्तारक पात्रादि को धूप मे न मुखाने वाले, संयम को आराधना होनी कठिन है।
अनुपयुक्त पुन-पुन प्रतिलेखना और परिमाजन नही करने वाले को,
अर्थात् इस प्रकार के साधु को सयम पालना दुष्कर होता है।

मूल—अणायाणसेअं अभिग्गहिए सिज्जासणिअस्स, उच्चाकुइअस्स अट्ठा वंधिस्स मियासणिअस्स, आयाविअस्स समियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं पडिलेहणासीलस्स पमज्जणसीलस्स तहा तहाणं संजमे सु आराहिए भवइ।

भावार्थ—शैया, आसन का गहण करना, एक हाथ ऊंची निश्चल शैया रखना, सप्रयोजन शैया की काठो
पर वध बाधना इत्यादि काम नही आने के कारण होते है। जो शैयासन गहण करता है, एक हाथ ऊचा और
निश्चल शैया रखता है, जो प्रयोजन मे काठो पर वध बाधता है, जो प्रमाणोपेत आसन रखता है, जो उपधि

को धूप मे तपाता है, जो पाच समितियो से भावित आत्मा वाला होता है और जो वार-वार पडिलेहण व परिमार्जन करता है, वही साधु सुख से संयम को पाल सकता है ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा तओ उच्चार पासवणभूमीओ पडिलेहित्तए, न तहा हेमंत गिम्हासु जहाणं वासासु, से किमाहु भंते ! वासासुणं ओसन्नं पाणाय तणाय, बीआय, पणगाय हरिआणिय भवन्ति । वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथा वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिन्हित्तए तं जहा— (१) उच्चारमत्तए, (२) पासावणमत्तए, (३) खेलमत्तए ।

भावार्थ—वर्षा काल मे रहे हुए साधु-साध्वियो को स्थण्डिल की तीन भूमिया प्रतिलेखनी कल्पती है । अर्थात् दूर, मध्य और नजदीक की । लेकिन शीत और ग्रीष्म कालो मे ऐसा नही किया जाता । शिष्य पूछता है कि, स्वामिन् इसका क्या कारण है ? आचार्य फरमाते है कि चातुर्मास मे अख्सर करके इन्द्रगोप आदि प्राणी, तृण, बीज, नोलन-फूलन और हरे अकुरे अनेको होते है । बस, इसी से विशेष प्रतिलेखन के लिए कहा गया है ।

॥ २६८ ॥

वर्षा काल मे रहे हुए साधु-साध्वियो को तीन पात्र रखना कल्पते है। जैसे—एक तो स्थण्डिल के लिए, दूसरा मूत्र के लिए और तीसरा श्लेष्म के लिए।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्ते वि केसे तं रयणिं उवायणा वित्तए।

भावार्थ—चातुर्मास मे स्थित साधु-साध्वियो को पर्युषण मे, गाय के रोम जैसे बडे बाल रखना नही कल्पता और भाद्रपद शुक्ल पचमी का उल्लघन नही होना चाहिए। अर्थात् लोच किए विना सवत्सरी प्रतिक्रमण करना उन्हे नही कल्पता। तब तक लोच जरूर ही कर लेना चाहिए।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ नो निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए। जेणं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ सेणं अक्कप्पेणं अज्जो वयसीत्ति वत्तव्वं सिया, जेणं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से निज्जूहियव्वेसिया।

भावार्थ—साधु-साध्वी को क्लेशकारी वचन बोलना नही कल्पता। इस पर भी अगर कोई साधु अथवा साध्वी क्लेशकारी वचन बोले, तो उससे दूसरे साधु अथवा साध्वी ऐसा कहे कि, "आर्य, तुमको ऐसे वचन

॥ २६६ ॥

बोलना नहीं कल्पता । अर्थात् पर्युषण के पहले कदाचित्, कोई क्लेशकारक वचन कहे हो तो संवत्सरी प्रतिक्रमण मे शुद्धिभाव से मिच्छामि दुक्कड़ं देकर क्षमा-क्षमापना कर लिया जाता है । फिर भी पर्युषण पर्व के वाद क्लेश के वचन कहे और मना करने पर भी न माने तो उस साधु या साध्वी को, जिस तरह तम्बोली सड़ेपान को निकाल देता है, उसी तरह से गच्छ से निकाल देना चाहिए ।

मूल–वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अज्जे व कक्खेउ कडुए विग्गहे समुप्पजिज्जा सेहे राइणीअं खामिज्जा राइणीए वि सेहं खामिज्जा खमियव्वं खमावियव्वं, उवसमियव्वं उवसमावियव्वं संमुइ संपुच्छणा बहुलेण होयव्वं, जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो उ न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं से किमाहु भंते ! उवसमसारं खु सामन्नं ।

भावार्थ–साधु-साध्वियो मे यदि परस्पर कोई क्लेश हो गया हो तो रत्नाधिक बड़े मुनि को छोटा साधु खमावे । यह विधि-माग है । कदाचित शिष्यविधि से अपरिचित या अहकारी हो, तो बडे रत्नाधिक मुनि छोटे शिष्य को भा खमावे । स्वय क्षमा याचना करना और दूसरो को क्षमा प्रदान करना, स्वय शांति रखना, दूसरो से शांति रखवाना, राग-द्वेष को छोड, सूत्रार्थ पूछना वगैरह विनय से रहना चाहिए । जो क्षमा करता

॥ २७० ॥

है, वह आराधक होता है। किन्तु जो क्षमा नही करता, वह नही। इतना ही नही उसे जिनाज्ञा का विराधक भी कहना चाहिए। अत अपने आपको मदा क्षमाशील बनाना चाहिए। शिष्य प्रश्न करता है कि "भगवन्, ऐसा क्यो ?" आचार्य फरमाते है कि सम्पूर्ण प्रकार के संयमो के सारो का सार एक मात्र क्षमा और शांति ही है।

मूल–वासावासं पज्जोसवियस्स कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा तओ उवस्सया गिन्हित्तए तं वेउव्विया पडिलेहा साइज्जिया पमज्जणा।

भावार्थ–चातुर्मास मे स्थित साधु-साध्वियो को, तीन उपाश्रय ग्रहण करना कल्पते है। जिस उपाश्रय मे साधु स्थित है, उसे एक वार प्रात काल मे, दूसरी वार साधुओ के गोचरी के लिए जाने पर, और तीसरी वार प्रतिलेखन के समय परिमार्जन करना चाहिए। ग्रीष्म और शीतकाल मे दो वार परिमार्जन करना चाहिए। शेष दो उपाश्रयो का भी प्रतिदिन, प्रतिलेखन और परिमार्जन करना चाहिए। और तीसरे दिन, पादप्रोञ्छन से परिमार्जन करना चाहिए।

मूल–वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा कप्पइ अन्नयरिं दिसिं व अणुदिसिं वा अवगिज्झिय अवगिज्झिय भत्तपाणं गवेसित्तए से किमाहु भंते ? ओसन्नं

समणा भगवंतो वासासु तव संपउत्ता भंवति तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्ज वा पवडिज्ज वा तामेव दिसिं वा अणुदिसिं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति ।

भावार्थ—चातुर्मास मे रहे हुए साधु-साध्वियो को यदि किसी भी दिशा अथवा विदिशा में आहार-पानी वगेरह के लिए जाना हो तो गुरु आदि से कहकर हो जाना कल्पता है । शिष्य प्रश्न करता है कि भगवन् ! इसका क्या प्रयोजन है ? इस पर आचार्य फरमाते है कि अक्सर करके, वर्षाकाल मे श्रमण भगवन्त, साधु, मुनि तपस्या करके दुर्बल हो जाते है । इसलिए यदि कही थककर बैठ जावे, गिर जावे अथवा मूर्छित हो जावे तो जिस दिशा का बतलाकर वे गये हो, उस दिशा मे तपस्वियो की समुचित संभाल हो सकती है ।

मूल—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाणं व निग्गंथीण वा जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतु पडिनियत्तए अन्तरा विअ से कप्पइ वत्थव्वए नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ।

भावार्थ—चातुर्मास में साधु-साध्वियो को वैद्य व औषधि आदि को आवश्यकता प्रतीत होने पर, बीमार के निमित्त, चार-पाच योजन तक जाना आना कल्पता है परन्तु वहा रहना नहीं कल्पता । कदाचित वापस स्वस्थान पर आने में किसी प्रकार की असमर्थता हो तो बीच, ही मे, रात्रि के समय ठहर जाना चाहिए ।

॥ २७२ ॥

किन्तु वहा तो कदापि नही रहना चाहिए। तात्पर्य है कि जिस दिन कार्य हो चुका हो, उस रात्रि मे वहां नहीं ठहरना चाहिए। कार्य होते ही, वहा से प्रस्थान कर देना उचित है।

मूल–इच्चेइअं संवच्छरिअं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता, पालित्ता, सोभित्ता, तीरित्ता, किट्टित्ता आराहित्ता, आणाए अणुपालित्ता अत्थेगइया समणा निग्गंथा तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति मुच्चंति, परिनिव्वाइंति सव्वदुक्खाणमंतंकरेंति, अत्थेगइया दुच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतंकरेंति अत्थेगइया तच्चेणं अंतं करेंति सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमंति ॥

भावार्थ–यूं पूर्वोक्त सांवत्सरिक चातुर्मास सम्बन्धी स्थविरकल्प का, सूत्रानुसार, कल्प के अनुसार यथातथ्य रूप से, सम्यक प्रकारेण, मन, वचन, काया द्वारा पालन और अतिचार से रक्षण करने, विधि पूर्वक मनन करने और शोभा बढाने, यावज्जीवन आराधना करने, अन्य को उपदेश देने, यथाक्तकरण पूर्वक आराधना करने मे जिनेश्वर की आज्ञा का पालन करके कितने ही साधु-साध्वी सम्यग् आराधना पूर्वक सिद्ध हो जाते है। तत्ववेत्ता अथवा बुद्ध बन कर्म बन्धनो मे मुक्त हो जाते है। और सब दुखो से छुटकारा पाकर मोक्ष मार्ग के अनुगामी बन जाते है और कितने ही साधु-साध्वी दो अथवा तीन और उत्कृष्ट सात अथवा आठ भवो मे

अवश्यमेव मोक्ष मे चले जाते है और सभी प्रकार के दुखो से सदा के लिये मुक्त हो जाते है ।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए बहुणं समणाणं, बहुणं समणीणं बहुणं सावयाणं बहुणं सावियाणं बहूणं देवाणं बहुणं देवीणं मज्झगए चेव एवमाइक्खइ एवं भासइ, एवं पण्णवेइ एवं परुवेइ पज्जोसवणा कप्पो नाम अज्झयणं स अट्ठं सहेउयं सकारणं ससुत्तं सअट्ठं सउभवं सवागरणं भुज्जो भुज्जो उवदंसेइत्ति वेमी ।

॥ इति पज्जोसवणा कप्पो नाम अज्झयणं सम्मत्तं ॥

भावार्थ—उस काल अर्थात् चतुर्थ आरे के अन्त मे भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के समवशरण मे राजगृह नगर के गुणशिलक उद्यान मे अनेको साधु-साध्वियो श्रावको-श्राविकाओ की अनेकों देव और देवियो के मध्य इस प्रकार के वचन योग द्वारा फरमाया है, फल प्ररुपणा द्वारा प्रज्ञापित किया है, इस प्रकार की प्ररुपणा की है, तथा पर्युषणा कल्प नाम अध्ययन का, अर्थ हेतु, कारण, सूत्र, सूत्रार्थ और व्याकरण सहित पुन.-पुन उपदेश दिया है । यह बात श्री भद्रबाहु स्वामो ने अपने शिष्य समुदाय से कही ।

॥ इति पर्युषणा कल्प अध्ययन समाप्त ॥

आभार-दर्शन

कल्पसूत्र के द्वितीय संस्करण को जनता के समक्ष प्रस्तुत करने मे तपस्वी श्री मेघराजजी महाराज एवं मधुरवक्ता श्री अशोक मुनि जी महाराज की सतत प्रेरणा रही है। उन्ही की सद्प्रेरणा का यह सुफल है। इनके प्रकाशन मे निम्न महानुभावों ने हमे आर्थिक सहयोग प्रदान कर उत्साहित किया है —

५०१) श्री बी. शांतिलाल जी, मामूल पेंठ, बेंगलोर
५०१) श्री महावीर टेक्सटाइल्स स्टोर्स, बेंगलोर हस्ते ब्रजकुवर बहेन बाटलिया
५००) श्रीमान प्रेमराज जी साकला, अन्डरसनपेंठ
३००) श्रीमान हीराचन्द जी नेमीचंदजी बाठिया, वगडी (आरकाट)
१००) श्रीमान कंवरीमल जी सिंगी, अन्डरसनपेंठ
१००) श्रीमान घीसुलाल जी छाजेर (राबर्टसनपेठ) की धर्मपत्नी के तपस्या के उपलक्ष्य मे

हम इन सब महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देते है।

अध्यक्ष
—लक्ष्मीचंद तलेसरा

मंत्री
—अभयराज नाहर

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
ब्यावर

❀ श्री कल्प सूत्र समाप्त ❀

॥ २७६ ॥